आत्म-कथा

अर्थात्

देव समाज स्थापक की जुबिली ऐड्रेस जो पौष वदि प्रतिपदा संवत् १९६४ को उनके महाव्रत ग्रहण सम्बन्धी रौपक जुबिली महोत्सव पर लाहौर में पढ़ी गई थी।

H
294.572 D 491

H
294.572
D 491

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

CATALOGUED

आत्म-कथा

देव समाज स्थापक की जुबिली ऐड्रेस जो पौष वदि प्रति पदा सम्वत् १९६४ वि० को उनके महाव्रत ग्रहण सम्बन्धी रौपक जुबिली महोत्सव पर लाहौर में पढ़ी गई ।

देव समाज प्रकाशन
चण्डीगढ़ ◻ दिल्ली ◻ मोगा

आत्म-कथा

© देव समाज, सैक्टर, ३६-बी, चण्डीगढ़

H
294.572
D 491

प्रथम संस्करण	—	भाद्रपद १९६५ वि०
द्वितीय ,,	—	(१९२९ ई०) १९८६ वि०
तृतीय ,,	—	१९९२ वि०
चतुर्थ ,,	—	
पंचम ,,	—	(१९८० ई०) २०३७ वि०

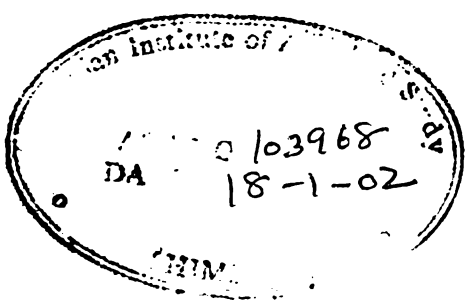

मुद्रक :
प्रिंट आर्ट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Library IIAS, Shimla
H 294.572 D 491
00103968

प्रकाशकीय

देव समाज संस्थापक परम-पूजनीय भगवान् देवात्मा के अद्वितीय जीवन-व्रत ग्रहण करने के पच्चीस वर्ष के पूर्ण होने पर अर्थात् रजत-जयन्ती महोत्सव के शुभ अवसर के लिए उन्होंने एक महान कृति की रचना की जिसे पौषवदी प्रतिपदा सम्वत् १९६४ वि० (२० दिसम्बर १९०७ ई०) को उक्त महोत्सव की महासभा में प्रस्तुत किया गया था। पदनन्तर उसे "आत्मकथा" के रूप में भाद्रपद १९६५ वि० को जीवन प्रेस, देवाश्रम, लाहौर में मुद्रित और प्रकाशित किया गया।

"आत्मकथा" का द्वितीय संस्करण सन् १९२९ ई० में प्रकाशित हुआ जिसमें प्रकाशक ने अपने आप यथास्थान विविध परिवर्तन एवं परिवर्धन किए, जिसके कारण इस पुस्तक की ऐतिहासिकता तथा साहित्यिक प्रमाणिकता जाती रही। खेद है कि इसके अन्तर तृतीय संस्करण (१९९२ वि०) और चतुर्थ संस्करण भी द्वितीय संस्करण के अनुरूप ही छपे—ये सब संस्करण अशुद्ध होने के कारण प्रमाणिक नहीं हैं। संकलित रचनाएं, खण्ड ५ में आत्मकथा को प्रथम संस्करण के अनुरूप प्रकाशित किया जा चुका है, क्योंकि ग्रन्थकार के इस पृथिवी पर विद्यमानता के समय का वही एकमात्र प्रामाणिक संस्करण है।

गत वर्ष पर्वताश्रम सोलन में पूजनीय भगवान् के निजी पुस्तकालय में उनकी निज-हस्त-संशोधित "आत्मकथा" (प्रथम संस्करण, भाद्रपद १९६५ वि०) की एक प्रति अधोहस्ताक्षरकर्ता को अनायास ही उपलब्ध हुई। "आत्मकथा" के इस संशोधित संस्करण में अनेक शाब्दिक परिवर्तनों के भिन्न कुछ अंशों को उन्होंने काट दिया था और कुछ नवीनतम अनुच्छेदों को सम्मिलित कर दिया था। यह एक अत्यन्त विचित्र और महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। अतः यह संस्करण इसी के अनुसार छापा जाता है।

इस रूप में प्रस्तुत संस्करण निश्चित रूप से पाठकों के लिए पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।

के० एल० वोहरा
मंत्री
भगवान् देवात्मा चैरिटीज़ ट्रस्ट

चण्डीगढ़
४ जनवरी, १९८०

१–विषय प्रवेश ।

आज हि के दिन, परन्तु आज से सत्तावन वर्ष पहले, मेरा जन्म हुआ था। आज हि के दिन परन्तु आज से पच्चीस वर्ष पहले, मैंने अपना महा अथवा जीवनव्रत ग्रहण किया था। इस लिए यह मेरी रौपक जुबीली का भी महोत्सव है। मैंने २० दिसम्बर पौषवदि प्रतिपदा को शुक्रवार के दिन जन्म लिया था, ठीक सत्तावन वर्ष के बाद आज भी यह पौषवदि प्रतिपदा और २० दिसम्बर और शुक्रवार का हि दिन है। मेरे इस विशेष जन्मोत्सव के दिन, क्या मेरे सुनाने के लिए, और क्या तुम सब के सुन्ने के लिए, मेरी आत्म-कथा से बढ़कर और कोई अनुकूल और प्रिय वस्तु नहीं हो सक्ती। इस लिए क्या मैं अपनी और क्या तुम सब की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए, ऐसे हि कितने और वार्षिक अवसरों की तरह, आज भी अपनी आत्म-कथा को हि सुनाना चाहता हूं। इसमें इतना फ़र्क ज़रूर होगा, कि इस्से पहले, मैं इस क़िसम का वर्णन ज़बानी करता रहा हूं, परन्तु इस दफ़ा मेरा रोगी गला, ऊंची आवाज़ के साथ, मुझे इस क़दर बोलने की इजाज़त नहीं देता। अतएव इस अवसर के लिए मैंने जो यह ऐड्रेस लिखकर तैयार की है, उसे मेरे एक सेवक मेरी तरफ़ से पढ़कर सुनाएंगे। ऐसा करने से यद्यपि मेरे ख़ास मुख से तुम इस ऐड्रेस को न सुन सकोगे; और मैं आप बोल कर अपने जिस क़दर आन्तरिक नाना उच्चभावों को तुम तक अधिक मात्रा में पहुंचा सक्ता, उसमें कुछ अन्तर ज़रूर पड़ेगा; परन्तु यों यह ऐड्रेस, जब कि मेरे हि अपने भावों, और उनके प्रकाश करने वाले शब्दों में रची गई है, तब वह शब्द जहां तक मेरी अपनी शक्ति से भर कर निकले हैं, वहां तक, कम या ज़्यादह, वह तुम सब तक ज़रूर मेरे प्रभाव पहुंचाएंगे। इसके भिन्न, जबकि ऐसे हि अवसरों की कई बार की ऐड्रेसें लिपिबद्ध न होने के कारण, कुछ देर के लिए तुम्हारे दिलों पर अपना २ असर डालकर गायब हो गईं, और फिर क्या तुम्हारे और क्या औरों के काम नहीं आ सकीं और स्थाई चीज़ नहीं बन सकीं; तब उनकी तुलना में मेरी यह लिखी हुई ऐड्रेस इस समय तुम सब के लिए, जहां तक सम्भव हो, प्रभावप्रद होने के भिन्न, आयंदा भी तुम्हारे और अन्य जनों के लिए, पाठ और प्रभाव लाभ करने की चीज़ रह सकती है।

अब मैं अपनी आत्म-कथा आरम्भ करता हूं।

२—मेरा निराला जीवनव्रत ।

पौष वदिप्रतिपदा संवत् १९०७ विक्रमी अर्थात् २० दिसम्बर सन् १८५० ई० को, शुक्रवार के दिन प्रातः काल सूर्य्योदय के समय क़सवा अक़बरपुर ज़िला कानपुर में मेरा जन्म हुआ । मनुष्य जगत के विकाशक्रम में मेरी गर्भजात वहुत वड़ी विशेषता थी । मैं देवजीवन सम्वन्धी, जिन निराली देव शक्तियों को वीज-रूप में पाकर आविर्भूत हुआ था, वह देव शक्तियां मेरी आयु की उन्नति के साथ २ प्रस्फुटित और उन्नत होने लगीं । सत्य और असत्य, हित और अहित विषयक वोधों की उत्पत्ति के अनन्तर, मेरे हृदय में एक ओर हित और सत्य के लिए आकर्षण, और दूसरी ओर अहित और असत्य के प्रति विकर्षण वढ़ने लगा और वह गाढ़ अनुराग और विराग भाव वन गए । इन सव देव शक्तियों के विकाश से मेरा यह देवजीवन अन्य करोड़ों आत्माओं से जो इन शक्तियों से शून्य थे, विलकुल निराला वनगया था । मैं अपनी इन सब शक्तियों के विचार से उन सव से विशेषता रखता था—मैं उन सव से अलग और एक निराले प्रकार का आत्मा था ।

प्रायः २३ साल की उमर में मैं लाहौर में आया । यहां पर स्कूल के घण्टों में पढ़ाने के कार्य्य के भिन्न, मैं अपना और समय, अध्ययन और विचार करने, और अन्य कई प्रकार के हितकर कामों में, ख़र्च किया करता था । गिनती के कुछ भले जनों के भिन्न मैं प्रायः और नाना प्रकार के लोगों से, चाहे वह किसी दर्जे के हों, कोई लगाव या मेल जोल नहीं रखता था ।

परहित साधन विषयक नाना अनुरागों के विकाश से यद्यपि नौकरी से कुछ घंटों के भिन्न मैं अपना कार्यगत सव समय नाना परोपकार के कामों में हि खर्च करता था, फिर भी धीरे २ मुझ पर इस अनुराग का इतना अधिकार वढ़ गया, कि मेरे हृदय में वीच २ में, यह प्रेरणा उत्पन्न होती, कि मैं सरकारी नौकरी के बन्धन को तोड़कर, पूर्णतः इसी उपकार के काम में अपना सारा जीवन भेंट कर दूं ।

एक बार, शायद सन् १८७९ या ८० में, मैं अपने घर में मिस मेरी कारपेंटर के उपकार भाव का कुछ हाल पढ़ रहा था। यह मिस इंगलेंड की रहने वाली थीं। इंगलेंड में जो लड़के किसी अपराध में क़ैद होकर जेल में दुष्ट स्वभाव वाले बड़ी उमर के अपराधियों के साथ रक्खे जाते, उनकी बुरी संगत से उन्हें बहुत हानि पहुंचती थी। लाखों जनों ने कभी इस बुराई को अनुभव न किया, क्योंकि उनके हृदय इस बुराई के अनुभव करने की योग्यता न रखते थे; परन्तु मिस कारपेंटर के विशेष हृदय ने उसे अनुभव किया। उनका हृदय इस बुराई को देखकर बिल-बिला उठा, और बहुत ज़ोर से प्रेरणा करने लगा, कि तुम उठो और उसके दूर करने के लिए संग्राम करो। उन्होंने विवश ऐसा हि किया। वर्षों के लगातार संग्राम के बाद, उन्हें इस कार्य्य में सफलता हुई। गवर्नमेंन्ट ने उनकी बात को मान लिया। पुराने क़ैदियों के साथ लड़के वा नव युवक क़ैदियों का रक्खा जाना बन्द और उनके बुरे असरों से उन्हें अलग रखने का प्रबन्ध किया गया।

इंगलेंड में कामयाबी हासिल करने के बाद उन्होंने भारतवर्ष के जेलखानों में भी, इसी प्रकार के संशोधन के लिए प्रयत्न करना शुरू किया। वह इस अभि-प्राय से कई बार इस देश में आईं। अन्त में बहुत दिनों के बाद यहां पर भी उनका परिश्रम सफल हुआ। कहा जाता है, कि जिन दिनों राजा राममोहनराय अपनी विलायत यात्रा में इनके पिता के घर में ठहरे हुए थे, उन दिनों यह युवा अवस्था में थीं। और इनका सुन्दर हृदय राममोहन की ओर इतना आकृष्ट हो गया था, कि वह उनके संग विवाह करने की पूर्णतः इच्छुक बन चुकी थीं। परन्तु इस बात के मालूम होने पर, कि वह पहले से हि विवाहित और सस्त्रीक हैं, उनकी यह आकांक्षा पूर्ण न हो सकी। इस पर उन्होंने, सारी उमर के लिए, कुमार व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की; और यह इच्छा की, कि जिस देश के भद्र पुरुष से विवाह सूत्र में बन्धकर वह उसके लिए सेवाकारी नहीं बन सकीं, उसके देश के लिए हि, जहां तक सम्भव हो, सेवाकारी बनेंगी। इसी शुभ व्रत को ग्रहण करके वह इस देश में कई बार आईं, और इसी शुभ भाव से परिचालित होकर उन्होंने लंडन में "नेशनल इण्डियन ऐसोसियेशन" नामक एक सोसायटी स्थापन की, कि जिसका उद्देश्य भारत की स्त्रियों में विद्या प्रचार और भारतवासियों और यूरो-पियन लोगों में मेल जोल पैदा करना था। तब से यह सोसायटी बराबर ज़िन्दा है। भारत में भी उसकी कई शाखाएं हैं और उसके द्वारा हर साल कुछ न कुछ शुभ काम होता रहता है। राम मोहनराय के सम्बन्ध में इस कहानी की कुछ असलियत हो वा न हो, परन्तु इस कहानी का दूसरा अंश तो बिलकुल सच है, अर्थात् मिस कारपेंटर ने, परोपकार के सात्विक भाव से परिचालित होकर,

जेल के संशोधन के लिए, वर्षों तक काम किया और उपरोक्त हितकर सभा भी स्थापन की है।

मैं जिस समय उनका वृत्तान्त पढ़ता, उस समय उनके इस परोपकार भाव की सुन्दर छवि, और वह भी मेरे इन्डिया के सम्बन्ध में उनकी सुन्दर छवि, जब मेरे सन्मुख आई, तब उसी समय मेरा हृदय उछल पड़ा। मैं अपने इस आन्तरिक उच्च भाव के वेग से विवश होकर चिल्ला उठा, और व्याकुल होकर ज़ोर २ से रोने लगा—ओह! विदेशी हृदय मेरे देश की किसी बुराई को अनुभव करे, वह उसके लिए उछले, वह उसे हज़ारों मीलों का सफ़र करके यहां बार २ आने और परिश्रम करने के लिए मजबूर करे; और खुद मेरे देशवासी अधोगति को प्राप्त होते २, अपने हि नाना प्रकार के भले और बुरे से बेसुध रहें! कैसा हृदय विदारक दृश्य!!

इस दृश्य ने मेरे हृदय में बहुत बड़ा आघात लगाया। मेरा पर हित अनुराग कुछ और बढ़ गया। तब से मेरे भीतर अपने देश के लिए अपने आपको भेंट करने का भाव कुछ और अधिक हो गया। सन् १८८० ई० के अन्त में एक बहुत बड़ी दुर्घटना हुई। इस जगत में मेरी प्रतिज्ञाबद्ध, सदा की साथी, हमदर्द, दुःख सुख में सहायक और सेवाकारी, मेरी प्रिय पत्नी और मेरी सहधर्म्मिणी का देहान्त हो गया! कितनी बड़ी हानि!! उच्चजीवन के मुझ निराले और अकेले मुसाफ़िर के लिए एक हि ऐसे साथी, और सहाय, धैर्य्य और उत्साह प्रदाता से बिछड़ जाना कैसी दुःखदाई और हताश करने वाली घटना!! इस महा भयानक आघात से कुछ काल के लिए मेरा दिल बहुत दुखी रहा! सन् १८८१ में मैंने एक वर्ष की छुट्टी ली और मैं प्रायः आठ वा नौ महीने लाहौर से बाहर रहा। नोवम्बर सन् १८८१ ई० में मैंने दूसरा विवाह किया। विवाह के अनन्तर मैंने फिर नौकरी का काम आरम्भ किया। कुछ दिनों के बाद अर्थात १८८२ में मेरे हृदय में फिर वही पहली प्रेरणा आरम्भ हुई। इस प्रेरणा को बढ़ाने वाली अनुकूल घटनाएं भी पैदा होने लगीं। इस साल मैंने जो पुस्तकें पढ़ीं, उनमें से एक महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित था। उसके पढ़ने से, यह प्रेरणा, कुछ और भी अधिक हो गई। इसके प्रबल होने से मेरे हृदय में एक संग्राम उत्पन्न हो गया। एक ओर लोगों की अति पतित, कुसंस्कार और पापग्रस्त और महा शोचनीय अवस्था मेरे सन्मुख थी, जिसे देख कर, मेरा प्रबल हित भाव, मुझे आंदोलित करके मेरे भीतर यह प्रेरणा करता था, कि तुम स्कूल मास्टर रहने के लिए नहीं, किन्तु किसी और महत् काम के लिए हो—दूसरी ओर अन्य कई भाव कार्य्य करते थे:—

(१) मेरी १५०) महीने की नौकरी थी; और सम्बन्धियों को छोड़कर मेरी पत्नी और मेरे तीन बच्चे थे, कि जिनके भरण पोषण और शिक्षा आदि, सब प्रकार के खर्च का, मुझ अकेले पर हि बोझा था। नौकरी के त्याग करने पर इनका क्या होगा ?

(२) मुझमें जो आत्म सन्मान का भाव वर्तमान था वह बार २ यह कहता था, कि तुम अपने वा अपने पारिवारिक जनों के लिए, किसी से अपने मुंह से कुछ दान भी नहीं मांग सक्ते।

(३) इस देश में जिस प्रकार के लाखों कहलाने वाले 'साधु" फिरते हैं, उस प्रकार के साधुओं जैसा तुम न कोई उद्देश्य वा लक्ष्य रखते हो, न उनकी तरह नाना सम्बन्ध और नाना सम्बन्ध-जनित कर्तव्य विहीन अवस्था को धर्म्म समझते हो, न उनका सा शास्त्र विश्वास रखते हो, न उनके से भाव रखते हो—ऐसी दशा में तुम्हें कौन पूछेगा ?

(४) तुम्हारा धर्म्म मार्ग निराला, तुम्हारा त्याग निराला, तुम्हारा लक्ष्य निराला, तुम्हारा कार्य्य निराला, फिर तुम यह सब कुछ निरालापन रखकर अपने देश वासियों से (जो तुम्हें घृणा करेंगे) अच्छे सलूक, वा किसी उचित सहाय की क्योंकर आशा कर सकते हो ? तुम्हारी इस निराली गति के कारण कितने हि लोग तो, तुम्हारे पहले से हि सख्त विरोधी बने हुए हैं—अन्य ईश्वरवादियों को छोड़कर तुम्हारी अपनी समाज के कई ईश्वरोपासक तक तुम्हारे विरोधी हैं।

परन्तु पहली प्रेरणा की तुलना में, यह पिछली प्रेरणाएं कुछ बहुत वज़न न रखती थीं। क्योंकि, मुझमें सत्य और हित विषयक, जो नाना अनुराग विकशित हुए थे, उनके विकाश के रास्ते में, इस्से पहले कभी कोई वासना वा उत्तेजना, वा अहं, वा संस्कार शक्ति पूर्णतः रोक नहीं बन सकी—यद्यपि कोई २ विरोधी अवश्य बनी। फिर यह संग्राम किस लिए था ? इस लिए कि मैं इस समय तक भलीभान्त यह निर्णय नहीं कर सका था, कि मुझ में जिस जीवन व्रत के ग्रहण और उसके लिए पूर्ण त्याग [और] समर्पण करने की प्रेरणा होती है, वह ज़रूर मेरे उन्हीं ईश्वर की तरफ़ से है, कि जिनका मैं उस समय पूर्ण भक्त होकर उनके आदेश पालन के लिए अपने आपको बाध्य समझता था। इसके भिन्न दो और बहुत बड़ी कठिनाइयां थीं—पहली यह कि मैं अपने हृदय के इस संग्राम को किसी और के सन्मुख प्रकाश नहीं कर सक्ता था, क्योंकि किसी और को इस योग्य नहीं समझता था, कि वह मेरे मार्ग में कुछ रोशनी डाल सक्ता है—"ओ खेशतन गुमस्त किरा रहबरी कुनद"—वह खुद गुमराह थे, मेरी रहबरी क्या कर सक्ते थे ? दूसरी यह कि मैं ईश्वर की दया पर पूर्ण विश्वास करके भी यह समझता था,

कि वह जीवों पर साधारण रूप से कृपा करते हैं, परन्तु किसी विशेष जीव को सन्मुख रखकर उस पर कोई विशेष कृपा नहीं करते; अर्थात् उस समय तक उनकी **विशेष कृपा** वा "इस्पेशियल प्रोवीडेन्स" के विश्वास ने मुझपर अधिकार लाभ नहीं किया था। इसलिए अपने हि दिल के भीतर चुप चाप बहुत उधेड़ बुन हो रही थी, और उसके अन्दर एक अजीब तूफ़ान जारी था। क्या करूं ? किस तरह फ़ैसला करूं ? किस तरह अपने आन्दोलित हृदय को शान्त करूं ? क्यों कर इस संग्राम में जयलाभ करूं ? आखिरकर इन्हीं दिनों फिर एक और आश्चर्य्य घटना हुई। मेरे पास एक बंगला की पुस्तक थी, जिसमें कुछ ईश्वरोपासकों की परस्पर सत्संग विषयक उक्तियां थीं। मेरे भीतर उसके पढ़ने का खयाल उठा। मैंने उसे निकालकर पढ़ना शुरू किया; उसमें ईश्वर की विशेष कृपा के सम्बन्ध में कुछ कथोपकथन निकल आया। उसके उस समय के पाठ ने मुझ पर जादू का सा असर किया। उसके पाठ से, जहां एक ओर, ईश्वर की विशेष कृपा के सम्बन्ध में मुझ में विश्वास उत्पन्न हुआ, वहां दूसरी ओर इस प्रश्न का कि क्योंकर मालूम हो, कि यह प्रेरणा ईश्वर की ओर से हि है, यह उत्तर मिला, कि ईश्वर की ओर से जो प्रेरणा होती है, वह एक वा दो बार होकर बन्द नहीं हो जाती; किन्तु बार २ होती रहती है। इन दोनों बातों के बाह्यक आकार में अवश्य भयानक भूल थी, परन्तु उनका आन्तरिक भाव अवश्य ठीक था।

"ईश्वर" विषयक विश्वास निश्चय मिथ्या है, और इसीलिए उनकी ओर से किसी प्रेरणा का होना भी अवश्य मिथ्या है, परन्तु यह सत्य है कि किसी मनुष्य वा पशु के हृदय में, जो भाव वर्तमान हो, उसकी प्रेरणा उसके भीतर अवश्य होती है। और यदि वह भाव भलीभान्त प्रबल हो चुका हो, और अन्य किसी भाव से दबा हुआ न हो, तो वह एक दो बार नहीं, किन्तु बार २ अपनी प्रेरणा भी करता है। फिर कोई भी उच्च भाव ऐसा नहीं, कि वह किसी आत्मा में प्रबल रूप से वर्तमान हो, और उसके सम्बन्ध में वह सदा वफ़ादार रहने के लिए सब प्रकार के आवश्यक त्याग करने के लिए भी तैयार हो, और फिर उसके इस संग्राम, अथवा उच्चगति दायक पथ में विश्व के उस भाग की शक्तियों से सहाय न मिले, कि जो उसका प्रतिमुहूर्त विकाश साधन कर रही हैं। मेरे साथ विश्व का यही अटल नियम पूरा हुआ। मैं उस समय मनुष्य और विश्व विषयक इन महा तत्वों को नहीं जानता था, परन्तु दरअसल हितार्थी और सत्यार्थी अवश्य था—हां पूर्ण रूप से था। इसलिए ईश्वर विषयक मिथ्या विश्वास के समय में भी मैंने नेचर के विकाशकारी विभाग से सदा सहाय लाभ की।

अब मैं अपने संग्राम के विषय में साफ़ फ़ैसला करने के योग्य बन गया।

मैं अपनी सब वासनाओं और उत्तेजनाओं आदि शक्तियों का प्रभु तो था हि, इसलिए जब मैंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया, कि यह प्रेरणा ईश्वर की तरफ़ से है, और वह चाहते हैं, कि मैं सत्य और हित का अनुरागी होकर इस जगत् से असत्य और अहित को नष्ट करने और सत्य और हित का राज्य लाने के लिए अपना समस्त जीवन उनके चरणों में दरअसल नेचर के विकाश [विषयक] कार्य्य के लिए) भेंट धर दूं, और वह सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप मेरे इस महा कठिन व्रत और संग्राम में अपनी **विशेष कृपा** के द्वारा मेरी सब प्रकार से रक्षा और आवश्यक सहाय करेंगे, तब मुझे क्यों कुछ और सोच विचार करना चाहिए, और क्यों न उनकी शुभ इच्छा के पूर्ण करने के लिए, अपने आपको उनके सन्मुख दीनता पूर्व्वक समर्पण कर देना चाहिए ? इस भाव के उत्पन्न होने पर मेरा हृदय इस भेंट के लिए बखूबी तैयार हो गया। मेरी सब दुव्धा चली गई। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि अब चाहे कुछ हो, मैं यह व्रत अवश्य ग्रहण करूंगा, और इस फ़ैसले से एक तिल भर पीछे न हटूंगा। मैंने अपनी इस इच्छा का अपनी पत्नी से ज़िकर किया। उन्होंने यद्यपि उसकी महा कठिनाइयां अनुभव कीं, परन्तु कोई विरोधी भाव प्रकाश नहीं किया, प्रत्युत मेरा सब प्रकार से साथ देने की इच्छा प्रगट की।

दिसम्बर सन् १८८२ में, यह फ़ैसला हुआ। इसी महीने के शायद दूसरे हफ़्ते के आख़ीर में लंडन के "मुक्ति फ़ौज" नामक ईसाई सम्प्रदाय के मेजर टकर नामक एक अंग्रेज़ प्रचारक, अपनी मेम और अपने कुछ और प्रचारकों के साथ लाहौर में आए। उन्होंने यहां के "रंग महल" में एक जलसा किया। मैं भी उसमें मौजूद था। वहां पर धर्म्म के लिए उनके प्रशंसनीय त्याग और उनकी मेम की छोटी सी तक़रीर ने मेरे फ़ैसले को गुप्त रूप से और भी मज़बूत कर देने में सहाय की।

१५ दिसम्बर का दिन था। मेरे जन्मदिन में केवल पांच दिन बाक़ी थे। मैंने अपनी नौकरी के सम्बन्ध में अपना त्याग पत्र लिखकर तैयार किया। वह त्याग पत्र यह था :—

To

THE DIRECTOR,
Public Instruction,
Punjab

Sir,

Having felt a call from Heaven that my services are required in another sphere of life, I feel my inability to retain my present post, and consequently beg to resign it after serving the Government for the last 14 years.

I shall feel obliged by your accepting this my resignation and issuing early orders to relieve me from the office.

I beg to add with your permission that I shall consider my self as freed from my present duties after 15 days, according to the ordinary rules of Government service, unless I receive instructions from you to the contrary.

I remain Sir,
Your most obedient servant
S.N. Agnihotri

Lahore :
15th December 1882

(हिन्दी अनुवाद)

पंजाब के शिक्षा विभाग के
डाइरेक्टर साहब की सेवा में।

महाशय !

ईश्वर की ओर से मैं यह आदेश पाकर कि मुझे जीवन के किसी और विभाग में सेवाकारी बन्ने की ज़रूरत है, मैं अपनी इस सरकारी नौकरी को कि जिसमें मैंने चौदह साल गुज़ारे हैं, और आयंदा नहीं रख सक्ता, और इसीलिए उसे त्याग करता हूं।

मैं आपका अनुग्रहीत हूंगा, यदि आप मेरा यह त्याग पत्र स्वीकार करके मुझे अलैहदा होने के लिए जल्द आज्ञा देंगे।

मैं आपकी अनुमति से, यह भी निवेदन करना चाहता हूं, कि मैं अपने आपको अपनी इस नौकरी से गवर्नमेंट के साधारण नियम के अनुसार, आज से

पन्द्रह दिन के बाद आज़ाद समझूंगा, सिवाय इसके कि आप मुझे इसके विरुद्ध कोई और हिदायत दें।

लाहौर
१५ दिसम्बर १९८२ ई०

मैं हूं आपका
बहुत आज्ञाकारी सेवक
एस० एन० अग्निहोत्री,

यह इस्तेफ़ा, मैंने अपने स्कूल के हेडमास्टर मिस्टर स्टेन्स साहब के आगे रक्खा। वह उसे पढ़ते हि दंग रह गए। कुछ देर तक चुप रहने के बाद वह बोले :—

Headmaster—I am very sorry that you are going.
I.—I am not sorry in the least.
H.—Have you well considered over the matter ?
I.—Yes.
H.—You have got family and children ?
I.—Yes, a wife and three children.
H.—You have duty towards God as well as towards your wife and children ?
I.—Certainly. But I am not going to neglect my duty towards my wife and children.
H.—Will you get any pay ?
I.—No. I depend on the Lord. He will provide.
H.—Shall I send on your resignation to-day or put it off for to-morrow ?
I.—Please send it on to-day.
H.—Are you decided ?
I.—Yes, I am decided about it.

(अर्थ)

हेडमास्टर साहब। मुझे बहुत शोक है, कि आप जाते हैं !!
मैं। मुझे तो कुछ भी शोक नहीं है।
हे०। क्या आप ने इस विषय में भली भान्त सोच लिया है ?
मैं। जी हां।
हे०। आपकी अपनी पत्नी और अपने बच्चे भी तो हैं ?
मैं। जी हां, एक पत्नी और तीन बच्चे।
हे०। जैसे आपको ईश्वर के सम्बन्ध में कर्तव्य साधन की ज़रूरत है, वैसे

हि अपनी स्त्री और अपने बच्चों के पालन के सम्बन्ध में भी ? तो उसकी ज़रूरत है।

में। बेशक। परन्तु मैं अपनी स्त्री और अपने बच्चों के सम्बन्ध में, अपने कर्तव्य को त्याग करने का इच्छुक नहीं।

हे०। आपको कहीं से कुछ तनख्वाह मिलेगी ?

मैं। नहीं। मैं ईश्वर पर भरोसा करता हूं। वह मेरी ज़रूरतें पूरी करेंगे।

हे०। क्या मैं आपका इस्तेफ़ा आज हि भेज दूं, वा अभी कल तक रोके रक्खूं ?

मैं। कृपा करके आज हि भेज दीजिए।

हे०। क्या आप ने पूरा फ़ैसला कर लिया है ?

मैं। जी हां, मैंने पूरा फ़ैसला कर लिया है।

इधर मैंने इस्तेफ़ा दिया, उधर मेरे ऐसा करने पर लोगों में जगह २ उसकी चर्चा शुरू हो गया। चारों ओर से विरोधी मत प्रगट होने लगे। मेरी देव शक्तियों से विहीन, आत्मिक उच्च प्रकृति से अन्ध, किसी आत्मिक सत्य आदर्श की अभिलाषा से शून्य, धन, सम्पद्, मान, प्रशंसा, पद, प्रभुत्व और अन्य सुखों के आकांक्षी, और अनुरागी और प्रचलित नाना मतों, संस्कारों और प्रथाओं आदि के विश्वासी और दास, मेरे इस अनोखे जीवन व्रत की महिमा को कब देख वा समझ सकते थे ? इस लिए ऐसे लोग मेरे सम्बन्ध में अपनी २ "दुयवी दानाई" की बोलियां बोलने लगे। बहुत से लोग, मेरे मुखालिफ़ तरह २ की बातें करने लगे। मुझे खब्ती, पागल, बेवकूफ़ और नादान बताने लगे। किसी २ निसबतन् अच्छे दिल वाले ने अगर सख्ती से कुछ न कहा, तो यह कहकर कि "मेरे खयाल में ऐसा करना ग़लती में दाखिल है—खासकर जब यह इतना बड़ा कुनबा रखते हैं" अपना भाव प्रकाश किया। विरोधियों ने तो खूब हाशिए चढ़ाए—मुझ पर तरह २ की धोखे बाज़ी के इलज़ाम लगाए। परन्तु मेरी समाज के एक दो जनों ने, यद्यपि किसी उत्साह के साथ मेरा समर्थन नहीं किया, तो भी कोई विरोधी भाव प्रकाश नहीं किया। किसी ने जो मेरे प्रति आदर वा सन्मान का भाव रखता था, मेरी इस क्रिया को नापसन्द करके, सरल भाव से मुझ इस विषय में पत्र लिखा, और कितने हि ऐसे जनों ने जो मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, यह इच्छा प्रकाश की, कि वह सब एकत्र होकर एक डेप्यूटेशन की शकल में मुझ से मिलें, और मुझ से इस विषय में बात चीत करें; परन्तु मैंने उन की इस कामना को स्वीकृत न किया; इस विषय में बाबू चन्द्रनाथ मित्र ने बाबू नवीनचन्द्रराय को जो चिट्ठी भेजी थी, उसमें उन्होंने यह लिखा था :—

My dear Navin Babu,

The para in the Tribune had convinced me that all efforts to make Agnihotri recede will be useless. Yourself and others are of the same opinion. So let us drop the matter.

Sincerely yours,

18th December 1882. (Sd.) Chandra Nath Mittra

(अर्थ)

मेरे प्यारे नवीन बाबू !

अखबार ट्रिब्यून के एक जुमले ने मुझे यह निश्चय करा दिया है, कि अग्निहोत्री जी को अपने इरादे से मोड़ने में सब कोशिशें वेफ़ायदा साबित होंगी। आप, और और लोग भी यही राय रखते हैं। इस लिए ऐसी कोशिश को अब छोड़ देना चाहिए।

आपका सरल भाव से

१८ दिसम्बर ८२ ई० चन्द्रनाथ मित्र।

मैंने इस्तेफ़ा देने के बाद हि यह इरादा कर लिया था, कि मैं चार दिन के अनन्तर अर्थात् २० दिसम्बर सन् १८८२ ई० को, अपने **बत्तीसवें वार्षिक जन्मदिन पर** अपने इस नए व्रत को, पबलिक के सामने, एक विशेष अनुष्ठान के द्वारा ग्रहण करूंगा। अखबार ट्रिब्यून में इसी अनुष्ठान के सम्बन्ध में नोटिस दी गई थी।

इस महाव्रत सम्बन्धी अनुष्ठान की तैयारियां आरम्भ हुईं। पण्डित नवीनचन्द्रराय ने, जो हिन्दु शास्त्रों के विख्यात वेत्ता थे, मेरे इस अनोखे व्रत विषयक अनुष्ठान के लिए बिलकुल एक **नई पद्धति** रचकर तैयार की। उन्होंने अपनी क़िसम के इस निराले अनुष्ठान का नाम "ब्राह्म सन्न्यास" रक्खा। प्रचलित "हिन्दु सन्न्यास" से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, यह प्रगट करने के लिए उन्होंने सन्न्यास शब्द के आगे विशेषता वाचक "ब्राह्म" शब्द नियोजित किया। यह पद्धति छै अंगों में विभक्त थी। यथा :—

(१) आचार।
(२) कर्म्म।
(३) त्याग।
(४) ग्रहस्थिति।
(५) धर्म्म पालन।
(६) ब्रह्मयोग।

२० दिसम्बर, बुध का दिन, रात्रि का समय, और ब्रह्म मन्दिर का स्थान, इस अनुष्ठान के लिए नियत किया गया। उपरोक्त समय से पहले २, मन्दिर का हाल भली भान्त सुसज्जित किया गया। मन्दिर का अगला बड़ा भाग पुरुषों के बैठने के लिए, और पिछला भाग चिकें डालकर स्त्रियों के बैठने के लिए स्थिर किया गया। सन्ध्या के समय स्कूल से वापिस आकर, मैंने पहले क्षौर कराया, और शिर और दाढ़ी और मूंछों के सब बाल मुंडवा दिए। फिर स्नान करके, मैंने वह गैरिक वस्त्र धारण किए, कि जो इस अवसर के लिए तैयार किए गए थे। फिर अपनी सहधर्म्मिणी और अपने बच्चों के साथ नियत समय से कुछ पहले, मैं ब्रह्म मन्दिर में अपने नियत स्थान पर जा बैठा। हाल में मेरे प्रवेश करने से पहले हि दर्शक पुरुष और स्त्रियों का इतना समूह था कि पैर रखने को जगह न मिलती थी। जिनको बैठने की जगह न मिली, वह बरामदों के दरवाज़ों पर झुंड बांधे हुए खड़े थे। इस बहुत बड़े मजमे में मेरे बहुत से विरोधी परन्तु यों ईश्वरवादी लोग भी वर्तमान थे। और वह वहां केवल दुष्टता प्रदर्शन करने और इस महा-शुभ कार्य्य में विघ्न डालने के लिए आए थे। इन लोगों ने शोर मचाना, और मुंह से सिसकारियां निकालना शुरू किया। इन कहलानेवाले भलेमानसों, परन्तु दरअसल महादुष्ट आत्माओं की यह इच्छा थी, कि किसी तरह यह अनुष्ठान पूर न होने पावे। इतने में मैं हठात् उठ खड़ा हुआ और अपने गेरवे वस्त्रों को दिखा-कर, और अपने आन्तरिक धर्म्मबल को अपनी वाणी के साथ नियुक्त करके, मैंने ऐसे लोगों से यह अपील की, कि यदि तुम और कोई मनुष्यता नहीं रखते, तो कम से कम इन वस्त्रों की हि लाज रक्खो, कि जिनका सैंकड़ों वर्षों से तुम्हारे देश में सन्मान चला आता है। इस अपील ने पूरा काम किया। सारे हाल में सन्नाटा हो गया। अनुष्ठान का काम भली भान्त चलने लगा। पण्डित नवीनचन्द्र ने ब्रह्म उपासना के अनन्तर अपनी रची हुई नई पद्धति के अनुसार इस अनोखे अनुष्ठान का काम शुरू किया। इस अनुष्ठान की कार्य प्रणाली इस प्रकार थी :—

कार्य्य प्रणाली

(१) नामकरण।
(२) शास्त्रीय वचनों का अर्थ सहित पाठ।
(३) मन्त्र स्मरण करना।
(४) अनुष्ठान परिचालक की ओर से उपदेश।
(५) अनुष्ठान परिचालक की ओर से प्रार्थना।

(६) भजन।

(७) व्रतधारी का भाव प्रकाश।

(८) व्रतधारी की ओर से प्रार्थना।

(९) भजन।

(१०) परिचालक की ओर से आशीर्वाद।

(११) अन्य जनों की ओर से आशीर्वाद।

(१२) मेम्बरों की ओर से संगीत।

परिचालक ने मुझे अपने समीप आसन पर बिठाकर, पहले मुझ से कुछ आवश्यक प्रश्न किए। फिर उनके उत्तर के बाद (मेरी पहली सम्मति के अनुसार) मेरा **सत्यानन्द** नामक नया नाम रखा। उसके अनन्तर उन्होंने, अपनी पद्धति के पूर्ववत छओं अंगों के सम्बन्ध में, अर्थ और कहीं २ व्याख्या सहित, कुछ शास्त्रीय श्लोक पाठ किए। फिर मैंने अपने परम लक्ष्य के सम्बन्ध में जो मूलमंत्र ग्रहण किया था और जिसे वह भी पहले से जानते थे, उसे उन्होंने इस महा अवसर पर मुझे स्मरण कराया। फिर कुछ संक्षिप्त उपदेश देकर उन्होंने मेरे इस व्रत में सफल-काम होने के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना की। फिर एक भजन हुआ। उसके अनन्तर मैं खड़ा हुआ, और मैंने अपना भाव प्रगट करना शुरू किया। जहां तक मुझे याद है मेरा यह भाव क़रीब २ इस प्रकार का था :—

आज का यह दृश्य बिलकुल निराला है। मेरा व्रत भी पूर्णतः अनोखा है। मैं इस समय अपने आपको, इस नए रूप और नई पोशाक में, एक दुल्हन की तरह देखता हूं, कि जो इस भरी सभा में, सैंकड़ों जनों के सन्मुख सारी आयु के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर अपने लिए विवाह बन्धन अथवा विवाह-व्रत को ग्रहण करती है—हां, आज मैंने अपना एक और परन्तु बिलकुल अनोखा ब्याह रचाया है। एक पतिव्रता और सती स्त्री जिस प्रकार अपने पति के साथ विवाह सूत्र में बन्धकर, उसे अपने सब सम्बन्धियों से बढ़कर अर्थात् मुख्य सम्बन्धी बनाती है, और अपने जीवन की सब प्रकार की सैंकड़ों अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं में अपने उस मुख्य व्रत से विचलित नहीं होती, और दुख और सुख में, विपद् और सम्पद् में, सुस्थ्य और रोगावस्था में, समृद्धि और दरिद्रता में, हर्ष और शोक में, जवानी और बुढ़ापे में, सुन्दरता और कदर्य्यता में, भय और प्रलोभन में, अपने व्रत में सच्ची रहकर केवल उसी **एक** को अपने हृदय में सब से बढ़कर सन्मान देती है, उसके लिए सदा वफ़ादार रहती है, दिल २ में भी कभी उस्से असती वा बेवफ़ा नहीं बनती, उसी प्रकार मैंने आज अपने परम लक्ष्य, अर्थात् महा सुन्दर सत्य और शिव वा हित के प्रचार के सम्बन्ध में जो गठजोड़ किया है, उसके लिए

आयु भर अपने जीवन की आन्तरिक और बाह्यक प्रत्येक क्रिया में सच्चा रहना चाहता हूं। मैं अपने इस परम लक्ष्य का पूर्ण अनुरागी होकर जग के उपकार में हि अपनी सारी आयु व्यतीत करना चाहता हूं।

सकल जगत् के सम्बन्ध में उपकार व्रत को ग्रहण करके मेरे लिए संसार में रहना, और मनुष्यों के नाना सम्बन्धों में, जहां २ और जिस २ प्रकार का असत्य और अहित का राज्य फैला हुआ है, उसके नष्ट करने के लिए संग्राम करना, और उनके स्थान में सत्य और हित को उत्पन्न और स्थापन करना, एक लाज़मी बात है। इसीलिए इस देश के लाखों स्वार्थपरायण साधुओं, वैरागियों, सन्यासियों और फ़कीरों की तरह अपने नाना सम्बन्धियों और उनके सम्बन्ध में नाना उचित कर्तव्य कर्म्मों का त्याग मेरा त्याग नहीं; किन्तु मिथ्या और अहित अनुरागी आत्माओं ने जो कुछ घोर नरक फैला रक्खा है, और निकट से निकट के सम्बन्धों को भी परस्पर के लिए नाना प्रकार से हानिकारक बना रक्खा है, और जीवन्त धर्म्म से रहित होकर अधर्म्म को उच्च अधिकार दे रक्खा है, जिस्से सब प्रकार के सम्बन्धों में नाना प्रकार का निदारुण दुःख और क्लेश छाया हुआ है, और हाहाकार और आर्तशब्द निकल रहा है, उनके आत्माओं को बदलकर इस अवस्था से निकालने, और उनमें धर्म्म जीवन उत्पन्न करने के लिए अपने इस महा कठिन व्रत और महा कठिन संग्राम में मुझे जिस क़दर धन, मान, बड़ाई, इज्ज़त, सुख, आराम, स्वास्थ्य और बल आदि के त्याग करने की ज़रूरत होगी, वही सब त्याग ग्रहण करना मेरे लिए उचित और विधेय होगा। अपने परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए यही सब प्रकार का पूर्ण त्याग, मेरा सच्चा सन्यास होगा।

मेरे भीतर इस व्रत के सम्बन्ध में, कितने हि काल से बहुत बड़ा संग्राम जारी था। एक ओर मुझे अपने हृदय में ईश्वर की ओर से ऐसा करने की प्रेरणा अनुभव होती थी, और दूसरी ओर मुझे इस गहरे समुद्र में छलांग मारने से मेरी धन सम्बन्धी ज़रूरतें और अन्य आनेवाली नाना प्रकार की मुसीबतें अपने आपको पेश करके रोक बनती थीं। परन्तु आखिरकार इस संग्राम में मेरी देव शक्तियों की हि जय हुई। महात्मा बुद्ध के जीवन ने भी इस राह में मेरी बहुत मदद की। मेरा इरादा पक्का हो गया। मैंने यह भलीभान्त उपलब्ध किया, कि मैं इसी महाव्रत के पूरा करने के लिए प्रगट हुआ हूं। इस तत्व के साफ़ हो जाने पर पिछले शुक्रवार को मैंने नौकरी से इस्तेफ़ा दे दिया, और आज, हृदय के पूर्ण योग और उत्साह और हर्ष के साथ, इस साधारण सभा में अपना यह **जीवनव्रत** ग्रहण करता हूं।

आज से इसी महाव्रत को मुख्य रखकर मेरा सबके साथ सम्बन्ध होगा।

आज से इसी आत्मिक परम लक्ष्य को सन्मुख रखकर मैं तुम सब लोगों से अपना प्रत्येक सम्बन्ध रक्खूंगा और इसी की सफलता साधन करना मेरे जीवन का मुख्य साधन होगा।

अन्त में मैं अपने जीवनव्रत की सिद्धि में सहाय पाने के निमित्त तुम सब से कुछ २ भिक्षा मांगता हूं। भिक्षा का शब्द सुनकर डर मत जाना। मैं तुम से इस समय आशीर्वाद की भिक्षा चाहता हूं। तुममें से जो नौजवान यहां बैठे हों, वह मुझे अपनी भरी जवानी का उत्साह प्रदान करें; जो बूढ़े हों, और इस उमर में पहुंचकर संसार की किसी एक वा दूसरी बात से उदासीन बन गए हों, वह मुझे अपना यह भाव दान दें; जो बच्चे हों वह अपना **निश्चिन्त भाव** प्रदान करें; और जो सती स्त्रियां हों, वह अपना सतीत्व भाव दान दें।

इस भाव प्रकाश ने अधिकांश दिलों को हिला दिया। कितने हि स्त्री और पुरुष रोते और आंसू बहाते थे। इसके अनन्तर मैंने प्रार्थना की। फिर एक भजन हुआ। फिर सभा परिचालक और कुछ अन्य जनों ने आशीर्वाद सूचक कामनाएं कीं, जिसके अनन्तर आखरी गीत गाकर यह अलौकिक अनुष्ठान समाप्त हुआ।

इस्तेफ़ा दे चुकने के बाद से हि मेरे हृदय ने बहुत उच्च प्रभाव लाभ करने शुरू किए। व्रत सम्बन्धी अनुष्ठान के सम्पन्न हो जाने पर मैं बिलकुल एक नए लोक में पहुंच गया। मेरे सब उच्च भाव बहुत सतेज और सबल हो गए। मुझ में नई ज्योति प्रकाशित हुई। जैसे एक २ क़ैदी क़ैद की मियाद के खतम होने, और बेड़ियों के कटने पर, अपने आपको स्वाधीन और सुखी अनुभव करता है, वैसे हि मैंने अपने आपको, न केवल स्वाधीन और सुखी, किन्तु उस्से सैंकड़ों गुणा बढ़कर **कृतार्थ** बोध किया। एक मछली जो पानी से बाहर किसी सूखी ज़मीन पर पड़ी हो, वह वहां से निकलकर और पानी में प्रवेश करने का अवसर पाकर, अपने आपको जिस प्रकार अनुभव करती है, उसी प्रकार मैंने अपने आपको अनुभव किया। विश्व की जो विकाशकारी शक्तियां इस शुभ घटना लाने के लिए, लाखों वर्षों से संग्राम कर रही थीं, उन्होंने मानों सहस्र २ मुख से मुझ पर अपना आशीर्वाद किया। और इस गुप्त परन्तु महान् आशीष को पाकर मेरा हृदय धन्य २ होकर उछलने लगा, और निर्मल और उच्च आनन्द की अपूर्व लहरें लेने लगा। मैंने अनुभव किया कि अब मेरे जन्म लेने का महान् उद्देश्य, एक सीमा तक सफल हुआ।

व्रत ग्रहण करने के बाद तीन या चार दिन तक मैं स्कूल में जाता रहा। फिर क्रिस्मस अर्थात् बड़े दिन की तक़रीब में सात आठ दिन की छुट्टियां हो गईं। जिसके अनन्तर मेरे बहुत ज़ोर देने पर कुछ दिन में मुझे सरकारी नौकरी

से सदा के लिए छुट्टी मिल गई।

३. जीवन व्रत के अनन्तर मेरे आत्मा का विकाश

मनुष्य जगत् के विकाश के क्रम में मैंने मातृगर्भ से बीज रूप में वह विशेष शक्तियां लाभ कीं, जिनके विकाश से आत्मा की गठन पूर्णता को प्राप्त होती है; अर्थात् आत्मा सारे अंगों को प्राप्त होकर देव रूप ग्रहण करता है। मेरे आत्मा में यह देव जीवन उत्पादक शक्तियां यह थीं :—

हित विषयक पूर्णाङ्ग अनुराग भाव।
अहित विषयक पूर्णाङ्ग विराग भाव।
सत्य विषयक पूर्णाङ्ग अनुराग भाव।
असत्य विषयक पूर्णाङ्ग विराग भाव।

मेरी आयु की उन्नति के साथ २ इन शक्तियों ने क्रम २ से विकाश लाभ किया।

इन शक्तियों के भलीभान्त विकशित हो जाने से, मेरी वासना, उत्तेजना, अहं और मान्सिक आदि सब शक्तियां उनके अधीन हो गईं; अर्थात् उनमें से कोई शक्ति मेरे आत्मा की मालिक या परिचालक न रही और मेरे आत्मा पर इन्हीं देव शक्तियों का अधिकार हो गया। यही देव शक्तियां मेरे आत्मा की परिचालक बन गईं। यह शक्तियां देव शक्तियां थीं। इन्हीं देव शक्तियों के विकाश से मेरे आत्मा को देव जीवन लाभ हुआ।

४—मेरे व्रत का कार्य्य क्षेत्र—भारतवर्ष की प्राचीन हिन्दु फ़िलासफ़ी का हिन्दु जाति पर विशेषकर बहुत हानिकारक असर

पहले पहल मेरे जीवनव्रत का यह अनोखा कार्य्य किन लोगों में आरम्भ

हुआ ? भारत के निवासियों में, और वह भी अधिकतर हिन्दु जाति में, कि जो जाती नाना कारणों से महा अधोगति की अवस्था में पहुंची हुई थी। अपनी इस अधोगति में उसकी धर्म्म विषयक भ्रान्त फ़िलासफ़ी का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। इस फ़िलासफ़ी का एक अंश यह है :—

मनुष्य को अपने भले वा बुरे कर्म्मों का फल भोगने के लिए इस पृथिवी में बार २ जन्म लेना और मरना पड़ता है। पुनः पुनः जन्म लेना और मरना और संसार के बन्धनों में पड़कर दुःख पाना कदापि वांछनीय नहीं है। सब प्रकार के भले और बुरे कर्म्म मनुष्य के लिए बन्धन का हेतु हैं; इसलिए पुनर्जन्म अथवा आवागवन से मुक्ति पाने के लिए क्या भले और क्या बुरे, **सब कर्म्मों** का **त्याग** आवश्यक है।

इस फ़िलासफ़ी का दूसरा अंश यह है :—

मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से निवृत्ति और केवल सुख चाहता है। संसार में नाना प्रकार के सम्बन्धों को रखकर नाना प्रकार के दुःख पाना लाज़मी है। इसलिए सुखार्थी मनुष्य को चाहिए, कि वह अपने सब प्रकार के सांसारिक सम्बन्धों को त्याग दे और मां, बाप, भाई, बहिन, स्त्री, बच्चे, स्वामी, भृत्य, मित्र, शत्रु, दरिद्र, धनी, दुःखिया, असहाय, मूर्ख, विद्वान्, स्वजातीय और स्वदेशीय जन, आदि सब प्रकार के मनुष्यों और अन्य जीवों से उदासीन होकर केवल अपने सुख के लिए जिए, और उसी को मुख्य रक्खे और योग आदि किसी विधि के द्वारा आनन्द लाभ करे। योग साधन से आवागवन से भी मुक्ति हो जाती है। औरों के भले और बुरे से कोई सरोकार न रखना लाज़मी है।

श्रीशंङ्कराचार्य्य जी जो इस दश में वेदान्त वा योग फ़िलासफ़ी के बहुत बड़े और अति विख्यात प्रचारक गुज़रे हैं, अपने मोहमुद्गर में कहते हैं :—

शत्रौ, मित्रे, पुत्रे, बन्धौ, माकुरु यत्नं निग्रह सन्धौ;
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं, वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम्। ६

अर्थ—शत्रु मित्र, पुत्र और बन्धु आदि किसी के झगड़े वा सुलह से कोई काम न रक्खो; यदि शीघ्र विष्णुपद की वांछा हो, तो इन सबसे विरत होकर समचित्त हो जाओ।

अर्थमनर्थं भावमनित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्;
पुत्रादपि धनभाजां भीतिःसर्वत्रैषा विहिता रीतिः। १३

अर्थ—धन को बुराइयों का मूल जानो, उससे किसी को लेश मात्र भी सुख

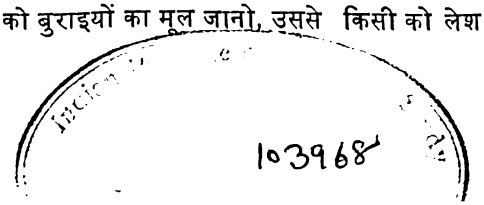
103968

नहीं मिलता। यह सब जगत् की रीति है, कि धनी को अपने पुत्र से भी खौफ़ रहता है।

इस लिए सब सम्बन्धों और कर्तव्य कर्म्मों का त्याग करके ऐ सुखार्थियो! अपने आत्मा में हि अपना सुख ढूंढ़ो। आप फिर कहते हैं :—

सुरवर मन्दिर तरुतल बासः, शय्या भूतलमजिनं वासः;
सर्व्व परिग्रह भोगं त्यागः; कस्य सुखं न करोति विरागः।

अर्थ—विष्णु मन्दिर के निकट एक वृक्ष के नीचे बास हो, भूमि बिछौना और हरन की खाल का ओढ़ना हो, संसार के सब सुख त्याग किए गए हों. इस वैराग्य के समान सुख कहां है ?

गीता में लिखा है :—

आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्य्यं न विद्यते। ३ १७

अर्थात्—जो मनुष्य अपने अन्तर आत्मा के हि सुख में सन्तुष्ट हो, उसके लिए कोई कार्य्य करना आवश्यक नहीं। अत्रि संहिता में कहा गया है :—

कर्तव्यतैव संसारो, न तां पश्यन्ति सूरयः।

अर्थात्—कर्तव्य कर्म्मों से हि संसार में फंसना पड़ता है। इसलिए बुद्धिमान् लोग कर्तव्य कर्म्मों के बखेड़ों में हि नहीं पड़ते।

तुलसीदास जी का वचन है :—

जहां काम तहां राम नहीं, जहां राम नहीं काम;
यह दोनों हिं ना मिलें, रवि रजनी इक ठाम।

अर्थ—जैसे सूर्य्य और रात दोनों एक जगह मिलकर नहीं रहते, वैसे हि जहां राम को रखना हो, वहां किसी काम को नहीं रख सकते।

योगी की अवस्था के विषय में यह लिखा है। कि

व्यापारात्खिद्यते यस्तु, निमेषोरमेषयोरपि;
तस्यालस्य धुरीणस्य, सुखं नान्यस्य कस्यचित्।
अत्रि संहिता।

अर्थ—जो जन ऐसी सिद्धि की अवस्था में पहुंच जाए, कि वह अपनी हि आंखों के खोलने और बन्द करने में भी दिक्कत मालूम करे, वह आलस्य परायण महात्मा जो सुख पाता है, वह किसी और को प्राप्त नहीं होता।

फिर मुक्ति प्राप्त आत्मा के सम्बन्ध में लिखा है, कि

मृत्पिड दण्ड लोष्टादि, शिला पट्टक कुटयवत् ।

वन्हि पुराण ।

अर्थ—मुक्त जन वह है, जो पूर्णतः वेसुध हो, और मिट्टी के पिंड, लकड़ी के डंडे, कंकर, पत्थर, या दीवार की तरह हो गया हो ।

कैसा महत् आदर्श! कहांपहले जीवनी शक्ति का खनिज पदार्थों में प्रगट होना, फिर लाखों वर्ष तक विकाश-मूलक संग्राम के बाद, उसका उद्भिद् और पशु के नाना आकारों में से उन्नत होते २ और नए से नए बोधों को प्राप्त होते २ मनुष्य के आकार में प्रकाशित होना, और एक काल तक भारत वासियों में भी धीरे २ सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ना और उन्नत होना और कहां फिर भारत की इसी सन्तान में से ऐसे तत्वज्ञानियों अथवा फ़िलासफ़रों का पैदा होना, और उनका उपरोक्त महा भ्रान्त विश्वास के अनुसार मनुष्य के लिए धर्म्म के नामा से नाना उचित कर्म्मों का त्याग करने, और योग समाधि का साधन देके उसे फिर खनिज पदार्थों अर्थात् कंकर पत्थर की अवस्था में पहुंचाने के लिए उपदेश देना और तैयार करना ! !

पुनर्जन्म के मिथ्या विश्वास से प्रारब्ध नामक एक और मिथ्या विश्वास की उत्पत्ति हुई । प्रारब्ध का मिथ्या विश्वास क्या ? यह विश्वास, कि मनुष्य वर्तमान काल में नाना प्रकार के जो २ सुख या दुःख भोग रहा है, वह उसके पिछले जन्मके कर्म्मों का फल होते हैं । इसलिए वह अमिट है। इसी को बाज़ों ने भाग्य वा क़िस्मत बताया; अर्थात् पैदा करने वाले परमेश्वर ने जिसके ललाट में जो कुछ लिख दिया है, उसे कोई दूर नहीं कर सकता । कहा गया है

"करम रेखा नहीं मिटे करे कोई लाखों चतुराई"

और भी

"क़िस्मत किया हर एक को क़स्सामे अज़लने,
जिस चीज़ के क़ाबिल कोई नासिख़ नज़र आया"

उपरोक्त मिथ्या विश्वासों के प्रचार से धीरे २ पूर्णतः निकम्मे और अति हानिकारक नाना साधु सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई । इस समय इन नाना साधु कहलाने वाले सम्प्रदायों में छोटे २ लड़कों जवानों और बूढों को लेकर प्रायः **बावन लाख** आदमी शामिल हैं, कि जो केवल यही नहीं कि देशोपकारक या सामाजिक काम कुछ नहीं करते, किन्तु उलटा अपने खान, पान, सैर और सफ़र और अधिकांश जन अपने तरह २ के नशे या अमल के ख़र्च लिए करोड़ों रुपया साल का बोझा भी अपने देशवासियों पर डालते हैं । और नाना पापों और एक

दूसरे के साथ अप्राकृतिक कर्म्मों के भिन्न सैकड़ों गृहस्थ लोगों के घरों को भी खराब करते हैं।

अच्छा हुआ, कि उपनिषद्कार और स्मृतिकार ऋषियों और शंकराचार्य्य जैसे योगियों ने, अपनी यह सन्यास शिक्षा स्त्रियों के लिए नहीं रक्खी और मोक्ष का यह धर्म्म स्त्रियों के लिए बन्द रक्खा, नहीं तो इस देश के लिए और भी बहुत बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाती। फिर भी यह सच है, कि कई सम्प्रदायों में स्त्रियां भी साधनियां बनाई जाती हैं।

इन साधु सम्प्रदायों को छोड़कर जो लोग गृहस्थी रहे, उनमें से ब्राह्मण कहलाने वाले लोगों ने, अपने भीतर से भी, एक बहुत बड़ी क्लास निकम्मे पुरोहितों की पैदा की। उनके पूर्व्वजों ने अपने २ विश्वास के अनुसर जिन नाना देवतों वा देवियों के सम्बन्ध में स्तुति और प्रार्थना आदि सूचक छन्द रचे थे और कई विषयों में जो रचना की थी और जो वेद नामक कुछ पुस्तकों में एकत्र की गई थीं, उन्हें अपौरुषेय, और अपने पहले पूर्व्वजों को अभ्रान्त प्रगट करना शुरू किया। धीरे २ यह संस्कार सारे देश में फैल गया, कि वेद अपौरुषेय हैं; अर्थात् वह किसी मनुष्य की रचना नहीं हैं। इस मिथ्या और महा हानिकारक विश्वास के फैल जाने पर "पुरोहित क्लास" की दुकान भलीभान्त कायम हो गई। इन पुस्तकों के भिन्न धीरे २ स्मृति और पुराण आदि नामक नाना पुस्तकें और भी रची गईं। इनके रचने वाले भी ब्राह्मण कहलाने वाली जमायत के हि लोग थे। इनके भिन्न प्रायः और सब लोग इन पुस्तकों के हाल से नावाक़िफ़ थे। बस और क्या चाहिए था! जैसे वर्तमान समय में हज़ारों लोग क़ानून से नावाक़िफ़ होकर वकीलों के मुंह की तरफ़ देखते हैं, वैसे ही प्रायः सब हिन्दु इन ब्राह्मण नामधारी परन्तु पुरोहिताई का पेशा रखने वालों के मुंह की ओर देखने लगे। इस पुरोहित क्लास के लोगों ने अपने टके सीधे करने के लिए, कितनी हि सूरतों में जान बूझकर और कितनी सूरतों में ख़ुद कुसंस्कारों में लिप्त होकर बेसुधि से, नाना प्रकार के मिथ्या मतों और कुरीतियों का प्रचार किया। यह महा हानिकारक क्लास, बावन लाख साधुओं की तरह, लाखों की तादाद में इस समय में भी लोगों के कुसंस्कारों और उनकी मूर्खता का फ़ायदा उठा रही है, और जोंक की तरह मूर्ख और कुसंस्कार ग्रस्त लोगों का ख़ून चूस रही है। भोजकी, महा ब्राह्मण, पंडे और गंगा पुत्र आदि नामधारी मनुष्य इसी सम्प्रदाय के मेम्बर हैं।

एक ओर मिथ्या विश्वासों और संस्कारों, घमंड, वा ईर्षा और द्वेष आदि शक्तियों के नीच और महा हानिकारक अधिकार से, और दूसरी ओर किसी ज्ञान

दायिनी विद्या का प्रचार न होने, और मूर्खता के महा भयानक अन्धकार से घिर जाने से, इस देश के वासियों की जो अधोगति हुई, उसका वर्णन नहीं हो सकता। इधर चारों तरफ़ से मिथ्या विश्वास ने दबोचा, उधर अविद्या और मूर्खता ने दबाया। इधर नाना सुख वासनाओं ने दिल पर कब्ज़ा किया, उधर घमंड, ईर्षा, द्वेष और घृणा ने जहां तव सम्भव था एक दूसरे को फाड़ा है, और उच्च और नीच कुल और वंश के मिथ्या प्रभेद भाव ने तरक्की करते २ उन्हें हज़ारों ज़ातों और बिरादरियों में विभक्त कर दिया। इसलिए कि लोग परस्पर शादी करने के लिए लाचार थे, अन्यथा यदि मर्द और औरत विषयक पाशिवक वासना इन करोड़ों मनुष्य आकारों, परन्तु नाना बातों में साधारण पशुओं से बहुत नीच जीवों में वर्तमान न होती, तो यह बिरादरियां भी मौजूद न होतीं। फिर इन महा अधोगति प्राप्त बिरादरियों के लोगों ने भी साधारणत: एक दूसरे को सताने, एक दूसरे की हानि करके खुश होने, और पापाचार के बढ़ाने, और मिथ्या के प्रचलित करने के भिन्न और क्या काम किया है ? और तो और, जिन कितनी हि राक्षसी रसमों के वह दास बन चुके थे, जिनके दास होकर वह तरह २ का अत्याचार, और दुख सहते थे, उनसे निकलने के लिए हाथ पांव मारना तो कहीं, ख्वाहिश या इच्छा करना तक असम्भव हो गया। एक २ गधा भी ऐसा मिलता है कि जब उस पर बहुत अधिक बोझा लादा जाए, तो वह उछल कूद कर अपनी पीठ से उसे गिरा देने की कोशिश करता है; परन्तु ऐसे पशुओं की तुलना में भारत के इन **ईश्वर और वेद विश्वासी हिन्दुओं** का हाल देखो, कि वह अधोगति प्राप्त होते २ मिस्ल मफ़लूज के हो गए। जैसे मफ़लूज आदमी बज़ाहिर जीता तो नज़र आता है, परन्तु अपने मारे हुए अंगों को हिला जुला नहीं सकता, वैसे हि यह बज़ाहिर ज़िन्दा रहकर भी आत्मा के नाना रक्षाकारी और हितकारी अंगों के विचार से बिलकुल मुरदा बन गए। और उच्च बनाने वाली शक्तियों और ऐसी शक्तियों से जिस उच्च चरित्र और उच्च बल की उत्पत्ति होती है, उनसे बिलकुल खाली रह गए।

यह बात सदा याद रखनी चाहिए, कि पूर्वोक्त फ़िलासफ़ी के आधार पर वर्णाश्रम, हवन, पंचयज्ञ, वेदगान, गायत्री जप, योग समाधि, ईश्वर या किसी अन्य देव देवी की उपासना आदि जितनी क्रियाएं हज़ारों वर्षों से प्रचलित हुई हैं, उनके रूप में कुछ २ इधर उधर परिवर्तन करा लेने से, और शब्दों का कुछ २ हेर फेर कर देने और उन के अर्थों के बदल देने से कोई वांछनीय फल पैदा नहीं हो सकता। कुटिलता और कपटता चाहे कैसी हि मोहिनी सूरत में सामने आती हो, फिर भी वह आख़िरकार वेश्या या कंजरी की तरह छलावा साबित होती

है। जैसे धतूरे के ज़हरदार वृक्ष की हज़ार क़तर छांट करके भी उससे ख़ून उत्पादक और जीवन दायक सेव के फल पैदा नहीं कर सकते, वैसे हि कुटिलता और कपटता के द्वारा कोई जाति उच्च नहीं बन सकती।

परन्तु जैसे इण्डिया को अपनी महा हानिकारक वैदिक फ़िलासफ़ी और उसके नाना प्राचीन वा नवीन आकारों से उद्धार पाने की ज़रूरत है, और—स्मरण रक्खो, कि एशिया के जापान ने भी ईश्वर और वैदिक फ़िलासफ़ी के मिथ्या विश्वास से नहीं, किन्तु उस्से मुक्त होकर हि आश्चर्य-जनक उन्नति की है—वैसे हि यूरोप और एमेरिका निवासियों को भी अपने आयंदा के उच्च विकाश के लिए ईश्वर और पोप और बाईबेल मूलक नाना मिथ्या विश्वासों से उद्धार पाने की ज़रूरत है। इस ज़रूरत को एक हद् तक पूरा करने के लिए नेचर के विकाश-कारी विभाग के द्वारा वहां कुछ काल से कितने हि लोग पैदा होकर इन मिथ्या विश्वासों के नष्ट करने का काम कर रहे हैं। कई सोसाइटियां भी इसी उद्देश्य के पूरा करने के लिए बन चुकी हैं। पाज़िटीविस्ट, रेशनल प्रेस, सेकुलरिस्ट और एथीकल सोसाइटियां इसी क़िस्म के नफ़ी वाले काम में अर्थात् पुरानी बोदी और गिरने वाली दीवारों के ढाने में मसरूफ़ हैं।

परन्तु इस काल में क्या धर्म्म की विज्ञान मूलक सच्ची फ़िलासफ़ी की शिक्षा देने के लिए, क्या मनुष्य के आत्मा के सम्बंध में सत्यज्ञान देने के लिए, क्या मृत्यु और जीवन तत्व सम्बन्धी सत्यज्ञान का प्रकाश करने के लिए और क्या धर्म्म विषयक सत्य साधन विधि प्रदान करने के लिए जिस पूर्णांग सत्य धर्म्मावतार (कल्पित ईश्वर का कल्पित मच्छ कच्छ अवतार नहीं) की सारी पृथिवी के लिए ज़रूरत थी, उसके प्रकाश का गौरव इसी देश को मिला है।

५—देवधर्म्म की घोषणा और देवसमाज स्थापन।

चार वर्ष के संग्राम के बाद मुझे कुछ गिनती के जो शिष्य और सहायक प्राप्त हुए, उनको लेकर, मैंने अपने व्रत सम्बन्धी कार्य्य को पूर्णतः स्वाधीन रूपसे पूरा करने का इरादा किया। ६ फाल्गुण सम्वत् १९४३ वि० अर्थात् १६ फ़रवरी सन् १८८७ ई० को, जो कि राज राजेश्वरी (अब परलोक वासिनी) विकटोरिया के

"गोलडन जुबीली महोत्सव" के अवसर पर मैंने विधि पूर्व्वक एक अनुष्ठान के द्वारा देवधर्म्म की घोषणा करके, उसकी जय पताका खड़ी की। इसी को देव-समाज के सूत्रपात का भी शुभ दिन समझना चाहिए। इस समय तक तीन जन मेरे साथ काम करने के लिए अपना सारा जीवन भेंट कर चुके थे—इनके भिन्न कुछ थोड़े से और हमदर्द और सहायक थे, और सब मिलकर प्रायः एक दर्जन आदमी थे। उन दिनों तीन मकान मेरे पास किराए पर थे, जिनमें से एक में मैं रहता था, दूसरे में मेरा आफ़िस था, और तीसरे में मेरा प्रेस। सन् १८८७ ई० के अन्त में मैंने इस देवाश्रम की ज़मीन खरीद की; सन् ८८ ई० में मैंने यहां पर छप्पर का एक मंडप खड़ा करके उसमें अपनी नई समाज का सब से पहला वार्षिकोत्सव सम्पन्न किया। फिर यहां धीरे २ कुछ और मकान बने और मैं यहां आकर रहने लगा, और अपना आफ़िस और प्रेस भी यहीं ले आया। फिर कुछ और इमारतें बनीं और यह देवाश्रम पूर्णतः बनकर तैयार हो गया। तब से अब तक यही आश्रम मेरे काम का प्रधान स्थान रहा है।

६—मेरी विरोधता और मेरा विश्वास!

जीवनव्रत ग्रहण करने से पहले भी कितने हि लोग मेरे बहुत विरोधी थे, परन्तु व्रत ग्रहण करने के अनन्तर तो गोया चारों ओर आग लग उठी, कि जो आग समय के साथ २ अधिक से अधिक प्रचंड होने लगी। इस विरोधता की अग्नि के प्रज्वलित होने का कारण क्या? कारण, मनुष्य में अहं प्रियता का बहुत प्रबल भाव। अहं प्रियता क्या? अपने संस्कार, अपने मत, अपने स्वभाव, अपनी रुचि, अपनी वासना, अपनी इच्छा आदि का प्यार, चाहे इनमें से कोई एक वा हरेक हि उसके और अन्य अस्तित्वों के लिए कैसी हि बुरी, कैसी हि अपराध वा पाप-मूलक और कैसी हि हानिकारक क्यों न हो। साधारण मनुष्य अपने किसी मिथ्या से मिथ्या संस्कार, वा मत, वा विश्वास, और बुरे से बुरे स्वभाव, और आचार के विरुद्ध कुछ सुन्ना पसन्द नहीं करता। और अपनी एक २ नीच से नीच और बुरी से बुरी और पापी से पापी, और मिथ्या से मिथ्या गति को इतना प्यार करता है, कि उस पर और तो और अनेक बार अपने किसी सच्चे हितकर्ता की ओर से भी कोई चोट पहुंचने पर बिलबिला उठता है; कोप से जल उठता है; आंखें बदल लेता है;

मुंह फेर लेता है; घृणा से भर जाता है; और उसे श्रद्धा और सन्मान की दृष्टि से देखने के स्थान में अश्रद्धा और शत्रु की निगाह से देखता है; और यदि इसके भिन्न वह अपने हृदय में द्वेष वा प्रतिशोध का प्रबल भाव भी रखता हो, तो फिर कृतघ्न और उत्पीड़नकारी बन कर उसे तरह २ से सताने और हानि पहुंचाने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे सब जन आत्मिक हित और अहित बोध से शून्य होते हैं। सत्य और असत्य के बोध से खाली होते हैं। पाप और असत्य को मुंह वा लेख के द्वारा बुरा कहकर भी दिल से अहित और असत्य के पूर्ण अनुरागी होते हैं—अनुरागी हैं, इसीलिए सारी पृथिवी में इस क़दर मिथ्या और पाप प्रचलित हो रहा है।

अब जिस आत्मा को विकाशकारी नेचर ने अपने विकाशक्रम में सत्य और हित विषयक अनुराग शक्तियों और असत्य और अहित विषयक विराग शक्तियों को बीज रूप में देकर प्रगट किया हो, और इन शक्तियों को विकशित करके उसे अपूर्ण और इसीलिए हानिकारक गठन से ऊपर पूर्ण गठन देना चाहा हो, और इस पूर्ण गठन के द्वारा सब प्रकार से सुन्दर, पवित्र, ज्योतिर्मय और पूर्णांग धर्म्मस्वरूप बनाकर सारे जगत् के पूर्ण उद्धार और पूर्ण कल्याण के लिए परम आदर्श रूप में प्रकाशित करना चाहा हो, वह भला दुनिया से बिलकुल निराला जीवन रखकर और जीवनव्रत ग्रहण करके क्योंकर अपने से उलटी प्रकृति रखने वाले लोगों में आराम से रहने की आशा कर सक्ता है ? नहीं कर सक्ता, नहीं कर सक्ता। वह खुद नहीं कर सक्ता, कोई और बुद्धिमान् भी नहीं कर सक्ता। इसी लिए मेरे सैंकड़ों, और सैंकड़ों से बढ़कर हज़ारों, की तादाद में विरोधी पैदा हो गए। उनके हृदयों में मेरे प्रति शत्रुता की महा भयानक आग जल उठी—चारों ओर से उसका धुआं उठने लगा—चारों ओर से यह आवाज़ बुलन्द हुई—यह हमारे धर्म्म को नुक़सान पहुंचाता है। यह हमारे धर्म्ममत को नहीं मानता। यह हमारे धर्म्म की निन्दा करता है। यह हमें दुनिया परस्त कहता है। यह हमें झूठा पुजारी बताता है। यह हमें पापी ज़ाहिर करता है। यह हमें कुसंस्कारग्रस्त प्रगट करता है। यह हमें कपटी और घमंडी ज़ाहिर करता है। यह गुरु बनता है और लोगों को अपना चेला बनाता है। गुरुडम ने पहले हि इस देश का बहुत नाश किया है। यह किसी पुस्तक को ईश्वर-रचित नहीं मानता। यह बड़ा मग़रूर है—यह अपने आप को बहुत बड़ा बतलाता है। यह हमारी सारी बातों को उलट पुलट किए देता है। खबर है, यह शैतान कहां से पैदा हो गया ? हम जैसे देवताओं की इस निवास भूमि में यह राक्षस कहां से आ गया ? यह हमारा दुशमन है। यह हमारे देश का दुशमन है। यह इस लायक़ है, कि इसके साथ जितना बुरा सलूक किया जाए,

उतना हि ठीक है। इसे हर तरह से बदनाम करना चाहिए, यहां तक कि फिर इसका कोई मुंह तक देखना पसन्द न करे। इसे किसी तरकीब से जेल में क़ैद कराना चाहिए। हो सके तो इसे जान से हि मार देना चाहिए। इसके शैतानी काम को हर तरह से बन्द करना चाहिए। इत्यादि; नाना भावों की चारों तर्फ़ से गूंज उठने लगी। सैकड़ों दिलों के भीतर से घृणा की, सैकड़ों के भीतर से विद्वेष और प्रतिशोध की, और सैकड़ों के भीतर से ईर्षा की खाजाने वाली और भस्म कर देने वाली अग्नि की प्रचण्ड लाटें उछलने लगीं। प्रति मास और प्रतिवर्ष यह विरोधाग्नि बढ़ने लगी। ओह! मैं अकेला कहां और कैसे लोगों से घिर गया!! ओह! मेरा संग्राम कितना महा कठिन संग्राम!! ओह! इतने बड़े और इतने शक्ति शाली विरोधी दल का मैं क्योंकर और कब तक मुकाबला करूंगा? ओह! ऐसे मनुष्यों से आवृत्त रहकर क्या मेरे लिए यह सम्भव भी है, कि मैं अपने व्रत को पूरा कर सकूंगा? इन प्रश्नों के उत्तर में समय २ में मेरे आत्मा के देव-कोष ने अपनी देववाणी में इस प्रकार कहा :—

"तेरे आत्मा में मेरा विकाश किसी महत् उद्देश के सिद्ध करने के लिए है। विश्व के विकाशकारी विभाग ने अपने लाखों वर्ष के महा कठिन संग्राम के बाद तुझे प्रगट किया है। सारे जगत् को हि अपने परम हित के लिए तेरे आविर्भाव की आवश्यकता थी। परन्तु और कितने हि देशों की तुलना में अत्यन्त शोचनीय और अधिकतर अधो-गति प्राप्त भारत के उद्धार और कल्याण के लिए तेरी विशेष-कर आवश्यकता थी। तू मेरी देवशक्तियों के अधिकार में आचुका है। तूने मेरी इन्हीं शक्तियों के वशीभूत होकर अपना वह अनोखा जीवनव्रत ग्रहण किया है, कि जिसे तेरे सिवाय इस पृथिवी में कभी कोई ग्रहण करने के योग्य न था। क्या हुआ, कि तेरे सन्मुख इतना विरोधी दल खड़ा है। ऐसे विरोधी दल का खड़ा हो जाना भी जरूरी है। विश्व के विकाशकारी विभाग ने जैसे तुझे प्रकाशित किया है, वैसे हि उसके अधो-गति दायक विभाग ने उन्हें जन्म दिया है। जैसे भेड़िय निर्दोष भेड़ पर आक्रमण करने, और उसे फाड़कर खाजाने के लिए अपने जन्म-जात हिंस्रक स्वभाव से हि चेष्टा करता है, वैसे हि यह अपनी जन्मजात और औरों से वृद्धि-प्राप्त नीच प्रकृति के वशीभूत होकर तेरे शत्रु बन्ने, तुझे देखकर दान्त पीसने, घृणा करने और तुझे नाना प्रकार से दुःख और हानि पहुंचाने के लिए चेष्टा करते हैं। परन्तु तू भेड़ नहीं, मनुष्य है, और मनुष्यों में भी देवात्मा है, और तू नेचर के महत् उद्देश के पूरा करने के लिए आविर्भूत हुआ है, इसलिए विश्व का जो विकाशकारी महान् विभाग तेरा प्रकाशक है, वही तेरा रक्षक है, वही तेरा सहायक है। विश्वास रख, कि तू इस महा संग्राम में परास्त होने के लिए

नहीं, किन्तु अन्त में जय पर जय लाभ करने के लिए है। तेरा विजयी होना निश्चय है। तेरे जीवन व्रत का धीरे २ सफल होना अवश्यम्भावी है।"

ऐसी कई अवस्थाओं में मेरे हृदय में एक २ वार यहां तक खयाल आया कि यदि मैं इस अद्वितीय संग्राम में निधन भी होजाऊं और हमेशा के लिए अपने **सारे अस्तित्व** को भी खोदूं, तो भी मेरे लिए इससे वढ़कर और कोई सौभाग्य वा गौरव नहीं है, कि मैं अपने इस अद्वितीय व्रत को पूरा करूं। जव तक कल्पित ईश्वर पर विश्वास था, तव तक विश्व के विकाशकारी विभाग के स्थान में, मैं अपने इस संग्राम में रक्षा और सहाय के लिए एक उसी पर निर्भर करता था—यद्यपि तब भी वह मिथ्या ईश्वर नहीं, किन्तु यही सत्य विश्व मेरा रक्षक और सहायक था। परन्तु सत्य की अधिक ज्योति के मिलने पर जव से यह मिथ्या विश्वास चला गया, तव से एक मात्र विश्व के विकाशकारी विभाग पर हि मेरा पूरा भरोसा और अटल विश्वास स्थापन हो गया।

७—विरोधता और उत्पीड़न का महा भयंकर तूफ़ान।

आज से ६ वर्ष पहले एक ऐसे हि अवसर पर मैंने इस विषय में जो कुछ बयान किया था उसका संक्षिप्त सार "जीवनपथ" में छपा था, मैं उसे यहां उद्धृत करता हूं:—

"मैंने अपने देश की जो महानीच और शोचनीय अवस्था वर्णन की, उसमें ऐसे असाधारण व्रत को ग्रहण करके मेरे लिए अपने देशीय जनों से नाना प्रकार की विरुद्धता और उत्पीड़न लाभ करना अवश्यम्भावी था। मतों के मतवाले, ईर्षा से भरे हुए, विविध पापों के अनुरागी, अपने नीच स्वार्थ के चरितार्थ करने के लिए, और तो और अपने निकट से निकट के सम्बन्धियों पर भी अत्याचार करने वाले, मुंह से किसी कल्पित ईश्वर के और दिल से किसी सच्चे शैतान की पैरवी करने वाले, वह लाखों जन, जो न तो धर्म्म अधर्म्म का कोई सच्चा ज्ञान रखते हों, और न अशुभ के स्थान में शुभ की कोई आकांक्षा वा उसके लिए किसी प्रकार का प्यार रखतें हों, उनके लिए भला यह क्योंकर सम्भव हो सक्ता था, कि वह मुझे शत्रु के स्थान में मित्र, अथवा परम मित्र और परम वन्धु के रूप में देखें,

और मेरे लिए जहां तक सम्भव हो, हानिकारक होने के स्थान में सहायकारी बनें ? नहीं हो सक्ता था और नहीं हुआ।

"इसीलिए जिस दिन मैंने नौकरी छोड़ने के लिए इस्तेफ़ा दिया, उसी दिन से कितने हि लोगों के भीतर खलवली मचगई, उसी दिन से विरोधी मतों का प्रकाश आरम्भ हुआ। और जब उसके चार दिन के अनन्तर मैंने अपने जन्म दिन के दिन, जीवनव्रत सम्बन्धी पवलिक अनुष्ठान सम्पन्न करना चाहा, तब उस सभा में भी अधिकांश लोगों ने विघ्न डालने के लिए प्रयत्न किया; और यदि वह अनुष्ठान कृत्कार्य्यता के साथ पूरा हुआ, तो इसलिए नहीं, कि उसमें विरोधी जनों ने अपनी कृपा का प्रकाश किया था, किन्तु और उच्च शक्तियों की सहाय से पूरा हुआ था। उसी दिन से विरुद्धता की अग्नि और भी प्रकाश रूप से भड़क उठी। नौकरी छोड़ने से पहले कितने हि जन, जो मुझे बहुत ज्ञानवान् और धार्मिक जानकर बहुत सन्मान की दृष्टि से देखते थे, वह अब मुझे पागल और मार्ग के भिखारी के रूप में देखकर मुझ से कट गए, और मुझे घृणा करने लगे। और मेरा यह जीवनव्रत ग्रहण करना और अपने व्रत (मिशन) सम्बन्धी कार्य्य की घोषणा करना, हज़ारों मनुष्यों के लिए इस प्रकार प्रतीत हुआ कि जिस प्रकार किसी गांव में किसी भेड़िये वा शेर का घुस आना, हानिकारक और डरावना प्रतीत होता है। और जैसे बन्दूक की आवाज़ सुनकर कौवों में कोलाहल मच जाता है, और चारों ओर से कागारौल आरम्भ हो जाती है, उसी प्रकार मेरे जीवन व्रत की घोषणा के शब्दों को सुनकर चारों ओर कोलाहल मच गया। पागल है, खब्ती है, मूर्ख है, देश में पहले हि बहुत भिख मंगे थे, अब एक और भिख मंगा पैदा हो गया; इत्यादि, शब्दों की गूंज आरम्भ हो गई। इधर मैंने कार्य्य आरम्भ किया, उधर विरोधियों का विरोध बढ़ने लगा। बढ़ते २ एक बहुत भयानक और धुआंधार तूफ़ान बन गया।

"जिन २ रूपों में विरोधिता का यह अति भयंकर झड़ प्रकाशित हुआ, उनमें से प्रथम श्रद्धा के स्थान में घृणा का प्रचार था। घृणा के उत्पन्न करने और फैलाने के लिए मिथ्याभियोग (झूटे इलज़ाम) आरम्भ हुए। ऐसा कोई नीच से नीच अपराध न था, कि जिसका मैं अपराधी नहीं बताया गया। मुझे झूठा, ठग, प्रवंचक, औरों की सम्पद् को अपहरण करने वाला प्रगट किया गया। व्यभिचारी और कंजर बताया गया। जब मेरी किसी कन्या की मृत्यु हुई, तो यह प्रकाशित किया गया, कि मैंने उसे मार डाला है। मुझे ख़ूनी और हत्यारा प्रसिद्ध किया गया; और वह भी ऐसा ख़ूनी नहीं, कि जिसने कोई एक ख़ून किया हो, परन्तु कई ख़ून, देश और "जाति" के लिए मुझे नाना प्रकार से महा हानिकारक

वताया गया। और यह सव कुछ जिव्हा के द्वारा हि नहीं; किन्तु वर्षों तक विभिन्न अखवारों में लिखने के द्वारा, वड़े २ रास्तों पर छपे हुए किन्तु गुमनाम इश्तिहारों के लगाने के द्वारा, और विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के प्रचार के द्वारा किया गया। जिन दश पापों से विरत होने के योग्य वन्ने पर मेरा एक २ श्रद्धालु सब से निम्न श्रेणी की सेवकी में ग्रहण किया जाता है, उनमें से मुझे नाना प्रकार के पापों का कर्ता प्रकाशित किया गया। इस प्रकार के अपवाद रटना करने और अत्यन्त घृणा के फैलाने पर भी जब कोई जन मेरी देव शक्तियों के प्रभाव से मेरी ओर आकृष्ट होकर आता, तव जैसे किसी मृत देह पर गिद्ध टूट कर पड़ते हैं, वैसे हि मेरे विरोधी उसे घेरकर और नाना प्रकार से वहका और डरा कर मेरे पास से निकाल देने की चेष्टा करते। इन भगौड़ों की अवस्था को सन्मुख लाकर हंसी भी आती है, और दुःख भी होता है। एक २ जन ने यद्यपि मेरे प्रभावों के द्वारा कई प्रकार की नीचताओं से निकलने और कई प्रकार के शुभ लाभ करने का अवसर पाया है, और पहले की अपेक्षा वह कितने हि अंश में भला जीव बन गया; परन्तु ज्योंहि विरोधी जनों ने अपने जहर से उसके कान भरने आरम्भ किए, त्योंहि उसने "हितोपदेश" के उस ब्राह्मण की न्याईं, कि जो जंगल में वकरी लिए जाता था, परन्तु मार्ग में कई ठगों ने वारी २ से प्रगट होकर जव उसे यह कहा, कि यह वकरी नहीं है, कुत्ता है, तव उसने अपनी वकरी को कुत्ता समझ कर छोड़ दिया था, एक २ वाग़ी आत्मा **अपनी साक्षात् परीक्षा के विरुद्ध** उनकी मिथ्या वातों पर विश्वास करके अपने शुभ और शुभ कर्ता को परित्याग करके उनका साथी बन गया है। मिथ्या कल्पना का जिस देश में हज़ारों वर्ष तक प्रचार रहा हो, वहां अपनी साक्षात परीक्षा और सत्य के विरुद्ध मिथ्या पर विश्वास करने के लिए प्रस्तुत होजाना, कोई अचम्भे की वात नहीं। इस प्रकार के भगौड़ों के भिन्न कुछ भगौड़े और भी थे, कि जो एक २ समय में किसी उच्च भाव के जाग्रत होने पर मेरे पास आकर रहे, परन्तु फिर अपनी एक वा दूसरी नीच रुचि और प्रकृति की सामग्री न पाकर ठहर न सके, और भाग गए। और इनमें से जिनके भीतर कृतज्ञता आदि का कोई उच्च भाव उत्पन्न नहीं हुआ था, और उसके विरुद्ध **प्रतिशोध भाव** प्रबल रूप में वर्तमान था वह भागकर और विरोधियों के साथ मिलकर चढ़ बढ़कर कृतघ्न और मेरे शत्रु वन गए। ऐसे लोगों को सामने रखकर और आड़ वनाकर विरोधी जनोंने मुझे और भी महा भयानक क्लेश और हानि पहुंचाने का अवसर पाया। उनकी इस महा भयानक नीच अवस्था से मेरे हृदय पर जिस २ प्रकार का आघात लगा मुझ जिस २ प्रकार का महा भयानक क्लेश पहुंचा, उसका वर्णन नहीं हो सकता! इन

महा दारुण आघातों से मुझ पर जिस २ भयानक रोग ने आक्रमण किया है, महीनों तक ऐसे किसी रोग से मेरे शरीर की जो कुछ दुःखदाई अवस्था रही है, उसका केवल उन्हीं को कुछ पता है, कि जो ऐसे समय में मेरे पास थे। और इन सब आघातों और महा क्लेशों से बड़े २ रोगों के भिन्न मेरा शरीर सदा के लिए जिस स्वास्थ्यहीन अवस्था को प्राप्त हो गया है, उसका तुम में से भी बहुतों को पता है। परन्तु यह सब कुछ भी काफ़ी न था। मैं अपने स्थान में प्रचार अथवा वार्षिक उत्सव आदि सम्बन्धी जो सभाएं करता था, उनमें यह लोग आकर जिस प्रकार की लीला करते थे, उससे एक २ बार ऐसा प्रतीत होता था, कि यह लोग अपनी नीचता के प्राबल्य से उस समय किसी गवर्नमेंट की भी परवा नहीं करते। बैंचों और लैम्पों का तोड़ना, एक २ समय किसी वस्तु को आग लगा देना, आश्रम में ईंटों और रोड़ों की वर्षा करना, चिल्ला २ कर मुझे अश्लील गालियां देना, फक्कड़ बकना, उनका एक साधारण काम था। मेरे साथियों को राह में छेड़ना, उन पर मट्टी और ढेले फेंकना, उन्हें घूंसे मारना, किसी का लाठी से सिर फोड़ देना, उनके हाथ से प्रचार सम्बन्धी पुस्तकें छीनकर फाड़ देना, इत्यादि कामों के द्वारा हमें सताकर वह बहुत प्रसन्नता लाभ करते थे। मेरे मार डालने के लिए लिख २ कर धमकियां देते थे। छपे हुए विज्ञापनों में ऐसी कामना प्रकाश करते थे, कि कोई राक्षस आकर मेरा गला घोंट दे।"

यह विरोधता बढ़ते २ सन् १८९२ ई० में तूफ़ान की शकल क़बूल करती है। इस साल अर्थात् पांचवें वार्षिकोत्सव पर कई जन यह कह कहकर कि उन्होंने ईश्वर की ओर से मेरे मिशन में काम करने की प्रेरणा प्राप्त की है, मेरे पास अपने आत्माओं को भेंट करने की आकांक्षा प्रकाश करते हैं। यह सभी यद्यपि कई बड़े २ पापों को त्याग कर चुके हैं, परन्तु उनके हृदयों पर नाना सुख वासनाओं और उत्तेजनाओं का बहुत बड़ा अधिकार है। वह आत्म-श्लाघा के अनुरागी हैं। वह नाना नीचगति दायक रुचियों और ख्वाहिशों के दास हैं। उनमें से कई ईर्षा-परायण हैं, और कोई द्वेष वा प्रतिशोध का महा भयानक भाव रखते हैं। वह अपनी किसी अवज्ञा और अपने किसी अपराध के लिए टोके जाने पर अपनी नीच परन्तु प्रिय क्रिया पर चोट खा कर जल उठते हैं, और घृणा भाव से भरकर अपने परम हित-कर्ता को भी शत्रु के रूप में देखने लगते हैं—सवाल हो सक्ता है, कि ऐसे जनों को लेकर मेरा कौनसा कार्य्य सिद्ध होगा? सच है। परन्तु इधर मेरा देश मुझे साधारणतः उन से कुछ बहुत बेहतर आत्मा नहीं दे सक्ता, उधर वह मेरे पास ईश्वर की ओर से अपनी तकर्रुरी का परवाना लेकर आते हैं—मैं ख़ुद भी ईश्वर का पूर्ण विश्वासी हूं, इसलिए एक ओर उनकी असल अवस्था का तजरबा

न रखकर और दूसरी ओर उन्हें ईश्वर की ओर से प्रेरित समझकर मैं उन्हें कम से कम आज़मायश के तौर पर ग्रहण करने के लिए मजबूर होता हूं। थोड़े दिनों में हि उनमें से कई अपने असलरूप में ज़ाहिर होना शुरू करते हैं—इनमें से किसी २ को कुछ हफ़्तों और कई को कितने हि महीनों के बाद उनकी नीच कर्तूतों और अयोग्यता के कारण निकालना पड़ता है। कुछ कई २ साल तक अपनी प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहने के लिए संग्राम करते हैं, परन्तु फिर परास्त होकर यद्यपि कोई और काम क़बूल कर लेते हैं, तो भी समाज से बाग़ी नहीं बनते। परन्तु जो बाग़ी बने उन में से कई जन जो वाहवा के बहुत ज्यादह भूखे थे, अथवा अपने भीतर कृतघ्नता का बहुत प्रबल भाव रखते थे, वह स्वभावतः मेरे विरोधियों के साथ जा मिले, और उनकी साज़िश में शामिल होकर जहां तक सम्भव था, मुझे और मेरे मिशन को हरेक मिथ्या कलंक और अन्य बुरे उपायों के द्वारा हानि पहुंचाने के लिए खड़े हो गए। इन कृतघ्नों की मदद पाकर मेरे हज़ारों विरोधियों के दिल उत्साह से भर गए। हर तर्फ़ कोलाहल मच गया। सब तर्फ़ से मेरे, और मेरे व्रत को नष्ट कर देने के लिए बड़े जोश के साथ प्रयत्न शुरू हुए। चारों ओर से महा दुखदाई तूफ़ान उठने लगा। इधर में पहले से हि ऐसे हि अज़ाबों से रोगी बन चुका था, उधर इन रहमदिलों ने मुझ रोगी को भी ज़िबह करके खा जाने की ठान ली।

इस समय मेरी क्या हालत थी, उसका कुछ पता उस लेख से मिलता है, कि जो मैंने एक बाहर से स्टेशन से उसी साल "विलाप" के हेडिंग से लिखा था। मेरा यह "विलाप" उन्हीं दिनों "धर्म्म जीवन" में छपा था। उसका एक बड़ा भाग यह है :—

"आह ! मेरी हालत कैसी दर्दनाक है ! हाय ! मेरी ज़िन्दगी किस क़दर रहम और तरस के क़ाबिल है !! मगर इस दुनिया में क्या कोई ऐसा है, कि जो मेरे दिल का ग़मगुसार और मेरी बेकसी और तकलीफ़ों के वक़्त मेरा हमदर्द साबित हो ? बज़ाहिर कोई नहीं ! क्योंकि मेरी तकलीफ़ों को और तो और, वह जो मेरे नज़दीक रहते हैं, **वह भी ठीक तौर से** महसूस नहीं करते, और जब महसूस हि न कर सकें, तो फिर अगर उनके अन्दर कुछ हमदर्दी हो भी, तो भी मुझे क्योंकर मिल सक्ती है ? पस मैं इस मख़सूस अज़ाब को अकेला हि सहने के लिए पैदा हुआ हूं ! हाय ! मैं अपने इस निराले अज़ाब के लिहाज़ से किस क़दर अकेला हूं !! मेरा इस दुनिया में कोई नहीं !!

तमाम दिन की मेहनत के बाद एक पापी से पापी मज़दूर भी रात को आराम से सोता है, और सुबह को फिर काम के लायक बन जाता है, मगर मुझे

बारहा रात का यह आराम भी हासिल नहीं। आह! मैं उस क़ुदरती आराम से भी महरूम किया जाता हूं, कि जो इस दुनिया में एक २ अदना से अदना जानवर को भी हासिल है!!

फिर यह सब अज़ाब कहां से पहुंच रहा है? क्या यह मेरे किसी पाप का नतीजा है? हरगिज़ नहीं; क्योंकि मैं ख़ुद पाप से पाक हूं। फिर क्या यह मेरी किसी जिसमानी या नफ़सानी ख़्वाहिश या हैवानी जज़वे के जोश का नतीजा है? हरगिज़ नहीं; क्योंकि उनमें से कोई जोश और कोई जज़वा ऐसा नहीं, कि जो मुझ पर ग़ालिब हो, और जिस पर देवत्व का तसर्रुफ़ न हो। फिर इस दुःख और अज़ाब की बुनियाद कहां है? उन लोगों की पिशाचाना ज़िन्दगी में, कि जिनके उद्धार और जिनके अन्दर धर्म्म की ज़िन्दगी पैदा करने का मिशन मेरे सिर पर है। और जो अपनी पिशाचाना ज़िन्दगी के तरफ़दार और आशिक़ होने के बायस मुझे जान बूझकर या वेखबरी से तरह २ का अज़ाब देने में ख़ुशी हासिल करते हैं। गोया जिसमें मेरा दुःख है, उसमें उनका सुख है।

मगर यह अज़ाब एक या चन्द दिन, या चन्द हफ़्तों का नहीं, कि जिस को किसी न किसी तरह दिल पर ज़ोर देकर और इरादे की ताक़त को काम में लाकर बरदाश्त किया जाए। वर्षों से उसका सिलसिला जारी है, और उसके सदमों से न सिर्फ़ मेरा दिल, वल्कि मेरा जिसम भी चकना चूर हो गया है। जिसमानी सिहत कई वर्षों से खो चुका हूं। जिसमानी कई तकलीफ़ें हमेशा के लिए पैदा हो गई हैं। दिमाग़ मुद्दत दराज़ के सख़्त काम और मुख़्तलिफ़ क़िसम के निहायत हि तकलीफ़देह फ़िकरों और तरद्दुदों से बहुत कमज़ोर हो गया है।

मेरी ऐसी वेवसी की हालत में जब देवत्व के दुशमनों की तर्फ़ से बज़ाहर कोई छोटी से छोटी चोट भी पहुंचाई जाती है, तो मेरे ग़ैरमामूली दिल और उसके ग़ैरमामूली भावों (फ़ीलिंगस) के बायस यह चोट मुझ पर इस क़दर सदमा लगाती है, कि जिसके धक्के से एक २ दफ़ा मेरी कुल रूह और मेरा कुल जिसम टुकड़े २ हो जाता है। और जब कोई बड़ी चोट पहुंचाई जाती है, तो फिर उस्से जिस क़िसम की वेक़रारी, और जिस क़िसम की वेचैनी पैदा होती है, और इस बेक़रारी की हालत में जो कुछ अज़ाब और दुःख महसूस होता है, उसका अन्दाज़ा सिवाय मेरे और कोई नहीं कर सक्ता।

जैसे किसी रेत के ढेर पर एक ढेला मारो, तो उसके ज़र्रे फैलकर सिर्फ़ थोड़ी-सी जगह घेरते हैं, मगर एक तालाव के पानी में ढेला मारो, तो उसके अन्दर जो इन्तशार पैदा होता है, उसका दायरा फैलते २ वहुत बड़ा बन जाता है, वैसे हि मेरे दिल का हाल है। एक २ पापी के दिल पर अपने हमजिन्स पापी के किसी २

बुरे सलूक से जहां बिलकुल सदमा नहीं लगता, या बाज़ दफ़ा सिर्फ़ बरायनाम लगता है, वहां ऐसे पापियों के एक २ अदना नापक हमले से, और जिनके साथ मेरा रूहानियत की बिना पर कुछ भी रिश्ता है, उनकी एक २ अदना से अदना नाज़ायज़ हरकत से मेरे दिल पर जो चोट लगती है, वह अपने घेर और असर के लिहाज़ से निहायत दूर तक फैलती है, और मुझे इस क़दर दुःखी करती है, कि उसे मैं हि जानता हूं।

मुझे यह दुःख इस क़दर क्यों मिलता है, और यह चोट इस क़दर क्यों लगती है ? इसलिए, कि मेरा दिल दुनिया परस्तों और पापियों का सा नहीं, बल्कि उनसे ग़ैर है, और वह देव भावों के लिहाज़ से अपनी फ़ितरत में इस क़दर ग़ैर, इस क़दर मुख्तलिफ़ और इस क़दर निराला है, कि जिस क़दर मेरी कुल ज़िन्दगी उनसे ग़ैर और निराली है, और इस लिए, इधर मेरा दिल जिस दर्जे लतीफ़ और ताक़तवर देव भावों से पुर है, उधर उसी दर्जे और उसी निसबत में वह पिशाचत की एक २ नापाक हरकत और नापाक चोट से तकलीफ़ और दुःख महसूस करता है। अफ़सोस है, कि इन चोटों के मुझ तक पहुंचने में वजाय इसके कि मेरे ख़ैरख्वाह साथी कुछ रोक बनें, बहुत सी सूरतों में उलटा अपनी नादानी से मददगार साबित होते हैं; और जो पत्थर किसी दुशमन की तर्फ़ से मेरी तर्फ़ उड़ता हुआ आता है, उसको अपनी नाफ़हमी से मुझ तक पहुंचाने में ज़रिया बन जाते हैं !! और इस तौर से मैं कहीं जाऊं, और कहीं रहूं, अमूमन इस अज़ाब और दुःख से मेरा पीछा नहीं छूटता। इस तौर से क्या अपने जिसम और क्या अपने दिमाग़, और क्या अपने दिल के ज़रिए पिशाचत्व के पक्के आश्कों और नीज़ अपने साथियों की नीच क्रियाओं, और मेरे मिशन के दुश्मनों और कई सूरतों में मोहसन आज़ार शख़्शों की तरफ़ से मुझ पर जिस क़दर चोटें लगती हैं, और मुझे जिस क़दर दुःख और अज़ाब मिलता है, उसका हिसाब किस के पास है ? और उसकी शहादत किस से मिलेगी ?

इस मुल्क की पुरानी मज़हबी फ़िलासफ़ी का एक आशिक कह सक्ता है, कि जब तू दुनिया के हरेक नापाक ताल्लुक़ और रिश्ते से आज़ाद है, और अपनी मखसूस फ़ितरत और ज़िन्दगी के लिहाज़ से इस दुनिया के लोगों में से नहीं है, तब फिर क्यों उन लोगों में रहकर और उनके लिए जीकर बरसों से यह खौफ़नाक अज़ाब और निहायत ग़ैरमामूली दुःख सह रहा है ? क्यों नहीं उस चश्में से हि कतातालुक कर लेता, कि जिस्से यह कुल दुःख और अज़ाब तुझ तक पहुंचता है. इसके जवाब में मैं यही कह सक्ता हूं, कि मेरा मिशन मखसूस है। मेरे ज़ाहिर होने का खास मक़सद है, कि जो मक़सद नेचर के इन्तज़ाम के मुआफ़िक़

है, और जिसका पूरा होना, क्या इस मुल्क के उद्धार, और क्या कुल दुनिया की रूहानी भलाई के लिए ज़रूरी है, और वह बग़ैर इस अज़ाब का बोझा उठाने के पूरा नहीं हो सक्ता !"

मेरी इस आहोज़ारी के बावजूद मेरे विरोधियों के हमले बराबर जारी रहे। इन्हीं दिनों में एक कृतघ्न ने मेरे विरुद्ध एक किताब मुशतहिर की और बाज़ ने आख़बारों में बहुत से झूठे मज़मून भी छापे। इन सब के द्वारा मेरे विरुद्ध घृणा और विद्वेष की अग्नि को खूब भड़काया गया। पहली नवम्बर सन् ९२ को लाहौर में एक विराट सभा की गई, कि जिसमें हज़ारों आदमी शामिल थे। इस मीटिंग में, उसे जिसे कुछ दिन पहले कई कृतघ्न अपना परम हितकर्ता कहते थे, अर्थात् मुझे, और मेरे सिवाए मेरे पारिवारिक जनों को, और मेरे कई अनुयाइयों को, जो पहले उनके श्रद्धा के पात्र थे, और जो उनकी तरह बाग़ी नहीं बने थे, खूब दिल खोलकर कोसा गया। जिस **ईश्वर के आदेश से कुछ दिन पहले वही लोग मेरे पास अपने आपको भेंट करने के लिए आए** थे, उसी से अब इस भरी सभा में **मेरे मरने और मेरी पत्नी के शीघ्र विधवा हो जाने के लिए भक्ति पूर्व्वक प्रार्थना की गई**। कहां तक उनके इस सर्व्व शक्तिमान् और परम दयालु ईश्वर ने अपने ऐसे भक्तों की प्रार्थना पूर्ण की है, उसका बताना मेरे लिए आवश्यक नहीं। मैं अब भी तुम्हारे सामने उसी जीवन्त स्थूल शरीर के साथ विद्यमान हूं, कि जिसकी मृत्यु के वह बहुत बड़े आकांक्षी थे। परन्तु मैंने उनकी इस विरोधिता को महा पाप-मूलक जानकर भी, अनेक बार न केवल उन कृतघ्नों, किन्तु अपने और कितने हि बड़े २ विरोधियों को अपनी मंगल कामनाओं में स्मरण करके उनका कल्याण चाहा है।

इसके भिन्न मुझे और मेरे काम को मटियामेल कर देने के लिए, वह सब नाना प्रकार के पापाचार ग्रहण किए, कि जिनकी, उनके ईश्वर परायण हृदय उन्हें प्रेरणा करते थे। अदालत में एक बड़े से बड़े मुलज़िम को भी अपने बचाव या "डिफ़ेन्स" का मौक़ा दिया जाता है, परन्तु उनकी सभा के दो दिन बाद जब मैंने अपने आश्रम में एक पबलिक सभा करके अपने डिफ़ेन्स को पेश करने की कोशिश करनी चाही, और वह कोशिश भी बहुत सख़्त तकलीफ़ और बीमारी की हालत में, तब इन न्यायकारी ईश्वर के भक्तों ने अपनी क़लई खुलती देखकर उस सभा को अपने भयानक शोर और ग़ुल, शरारत और दंगेबाज़ी के द्वारा होने न दिया। और अगर मेरी रक्षाकारी शक्तियां मेरी रक्षा न करतीं और पुलिस के भिन्न कुछ और जन मेरे पास न होते, तो वह लोग मुझे पीस कर, और यथा सम्भव मुझे जान से मार कर अपने दिलों को ठंडा करते। यह सभा तो होने से

रह गई, पर मेरे पहले से बहुत रोगी शरीर की स्नायु प्रणाली पर उनकी इन राक्षसी क्रियाओं का इस क़दर आघात लगा, कि वह बिलकुल चकना चूर हो गई, और मैं निहायत सख़्त बीमार हो गया—मेरी बीमारी दिनों दिन बढ़ने लगी, और मैं आख़िरकार उस अवस्था में पहुंच गया, कि जिसमें मेरे बचने की कोई आशा न रही।

रात का समय था, और चारों ओर सन्नाटा था। मृत्यु का अमल मुझ पर जारी था, और मैं बिलकुल बेहोश पड़ा हुआ था। मेरे इर्द गिर्द जो लोग मौजूद थे वह यही समझते थे, कि मेरे लिए वह रात काटनी मुशकिल है। मुझे ख़ुद भी पता न था, कि मैं कहां हूं। परन्तु इस घोर संकट की अवस्था में भी मेरे कुछ परलोक वासी उच्च सम्बन्धी मेरे पास उपस्थित होकर मेरे बचाने के लिए अपना २ धर्म्म बल प्रयोग कर रहे थे। जीवन और मृत्यु में संग्राम जारी था। आख़िरकार धर्म्मबल ग़ालिब आया, मृत्यु का कार्य्य बन्द हुआ, और मैं होश में आ गया। तब से आरोग्यता का रुख शुरू हुआ, और प्रायः दो महीने में मैं फिर चलने फिरने के लायक बन गया। मौत के बिस्तर से उठकर मैं फिर अपने व्रत सम्बन्धी कार्य्य में लग गया।

इस प्रकार की यह आखरी दुर्घटना न थी, किन्तु प्रायः ऐसी हि दुर्घटनाओं में से मुझे और भी अनेक बार गुज़रना पड़ा है। मुझे इस दुर्घटना में से गुज़रकर बहुत सी नई ज्योति मिली और बहुत सा आत्म बल लाभ हुआ। मुझ पर ज़ाहिर हुआ, कि मुझे अपनी कार्य्य प्रणाली में बहुत कुछ तबदीली की ज़रूरत है। समाज का वार्षिक उत्सव निकट था, और मैंने इरादा किया, कि मैं इस अवसर पर सब आवश्यक तबदीलियां पैदा कर दूंगा—मैंने अत्यन्त परिश्रम के साथ यह सब कार्य्य पूरा किया। इसी उत्सव अर्थात् फ़रवरी सन् १८९३ से सेवकी में दीक्षित होने की प्रथा जारी हुई।

मेरे विरोधियों का विरोध बराबर बढ़ता गया। इस उत्सव सम्बन्धी देवयज्ञ में विघ्न डालने, और उसे नष्ट करने के लिए मेरे विरोधियों ने भी नाना आसुरिक क्रियाएं शुरू कीं। तरह २ का अत्याचार जारी किया। यहां तक कि उनके ऐसे अत्याचारों की ज़िले के मैजिस्ट्रेट तक शिकायत करने की नौबत आई, और उसने यद्यपि पुलीस की मार्फ़त उन्हें बख़ूबी तम्बीह भी कर दी, परन्तु जैसे चीता अपनी खाल की धारियों को नहीं बदल सक्ता, वैसे हि यह लोग भी अपनी राक्षसी प्रकृति को बदल नहीं सक्ते थे; इसलिए उनके आसुरिक भाव बराबर बढ़ते गए।

वर्षों तक इस प्रकार के सलूकों के अनन्तर जब उन्होंने अपना उद्देश्य पूर्ण

होता हुआ न देखा, तो कुछ जनों की ओर से एक और प्रकार का उत्पीड़न आरम्भ किया गया। अर्थात् धर्म्म जीवन पत्र के एक दो लेखों को लेकर "लायबल" के मुकदमे खड़े किए गए। इन मुकदमों की पैरवी के लिए, जहां किसी स्थान में मेरे लिए किसी वकील का हासिल करना मुशकिल कर दिया गया, वहां दूसरी ओर बिना मेहनताना लेने के बहुत से वकील विपक्षी के साथी बन गए। यह वह समय था, जब कि हम गिनती के कुछ असहाय जन एक ओर थे, कि जो न बहुत धन रखते थे, न कोई बन्धु वा मित्र रखते थे, न अदालतों का कोई तजरुबा रखते थे; और उधर जो धनी थे, बड़े २ सर्कारी अफ़सरों के मित्र थे, आप वकील होने के कारण क़ानून और अदालतों की उत्तम रूप से अभिज्ञता रखते थे, वह दूसरी ओर थे। हमें अपने साथियों से बाहर एक जन भी ऐसा नहीं मिलता था, कि जो हमारे पक्ष के समर्थन के लिए कोई बड़ी सहायता तो एक ओर, **कोई सच्ची गवाही तक दे सके**। यहां तक, कि एक २ समय में जिन्होंने हम से नाना प्रकार का हित लाभ किया था, वह भी हमारे पक्ष में कोई **सच्ची साक्षी तक देना नहीं चाहते थे**। और हम लोग सब प्रकार से अति असहाय अवस्था में पहुंचाए गए थे। ईश्वर के पुजारियों और "सत्यमेव जयते" कहने वालों की कमी न थी, परन्तु उनमें से कोई सत्य का साथ देने के लिए प्रस्तुत न था। हां, उलटा हमारे विपक्षियों की सहाय करने के लिए कितनों का हृदय उछलता था। और हमारा विपक्षी खुली अदालत में यह कहता था, कि इनके मिशन का नाश करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। वर्षों तक यह क़ानूनी उत्पीड़न जारी रहा, और वर्षों तक उसके द्वारा जहां तक मुझे सताया जा सक्ता था, जहां तक मेरे महान कार्य्य को हानि पहुंचाई जा सक्ती थी, वहां तक उसके लिए यत्न किया गया। इन दिनों में हमें ईश्वर और उसके पुजारियों की जितनी परीक्षा हुई, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। हमारी इस असहाय अवस्था में हमारे विरोधियों के लिए यह विश्वास करना स्वाभाविक था, कि अब इनके "मिशन" की इतिश्री हो गई; और चारों ओर यही सम्वाद घोषणा भी किया जाता था। हज़ारों जन इस समाचार को सुनकर बहुत हर्ष प्रकाश करते थे। परन्तु इस महाकठिन संग्राम में यद्यपि मेरा शरीर चूर २ हो गया, सदा के लिए रोगी हो गया, धन सम्बन्धी भी बहुत हानि पहुंची, मेरा प्रेस भी बन्द हो गया, मेरे काम काज में भी बहुत विघ्न रहा, परन्तु अन्त में अधर्म्म पर धर्म्म की हि जय हुई। और यह बचन सत्य प्रमाणित हुआ, कि "यतो धर्म्म स्ततो जयः"; अर्थात् जिधर धर्म्म हो, उधर की हि जय होती है।

यहां पर यह प्रश्न उदय हो सक्ता है, कि मेरे यह महा विरोधी उत्पीड़न-

कारी कौन जन थे ? इसके उत्तर में मैं बता सक्ता हूं, कि यह अधिकांश रूप से वही जन थे, जो **एक ईश्वर के विश्वासी और पुजारी** कहलाते हैं। अधिकतर यही वह लोग थे, कि जो **अपने लिए धर्म्म प्रचार विषयक सब प्रकार की स्वतंत्रता रखना चाहते थे, परन्तु मेरी धर्म्म विषयक उचित स्वतन्त्रता को मिटा देने के लिए यत्न करते थे।** यही वह लोग थे, कि जो उपरोक्त सब प्रकार का उत्पीड़न करके अपने ईश्वर की इच्छा पूरी करते थे। इनके सम्बन्ध में एक घटना स्मरण रखने के योग्य है। और वह यह है, कि कितने हि वर्षों तक, मैंने इनका अत्याचार सहने के अनन्तर एक बार सुयोग पाकर जब इनके समाचार पत्रों के दो एडीटरों पर (कि जिन में से एक ने मुझे और मेरे मिशन को हानि पहुंचाने के लिए, बहुत अश्लील शब्दों में मुझ पर नाना प्रकार के झूठे अभियोग (इलज़ाम) लिखकर छापे थे, और दूसरे ने यह कहकर, कि हां, यह अभियोग बिलकुल ठीक हैं, अपने समाचार पत्र के द्वारा पोषकता की थी) अदालतों में नालिश की, तो इन लोगों ने बड़े २ वकीलों के परामर्श के अनन्तर यह जान्ने पर कि हम अदालत में इन झूठे इलज़ामों को किसी प्रकार भी सच्चा प्रमाणित नहीं कर सक्ते; और यद्यपि वह वर्षों तक ऐसी कर्तूतें करके, अपने एक ईश्वर को अवश्य प्रसन्न करते रहे हैं; परन्तु अदालत के प्रभु को प्रसन्न नहीं कर सक्ते, वह अवश्य उन्हें उचित दण्ड देगा; मेरे पास यह सन्देशा भेजा, कि वह मुझ से माफ़ी मांगने के लिए प्रस्तुत हैं। और जब उनसे यह पूछा गया, कि क्या तुम अपने इलज़ामों का झूठा होना स्वीकार करते हो ? तब उन्होंने कहा, हां। इस पर उन्हें कहा गया, कि अच्छा, अब तुम अपने २ और अपने भिन्न चार पांच और अंग्रेज़ी और उर्दू समाचार पत्रों में यह प्रकाशित करो, कि हमने इनके सम्बन्ध में यह जितने मन घड़ंत और झूठे अभियोग छापे हैं, उनके लिए बहुत लज्जित हैं, और आगे फिर इनके सम्बन्ध में और झूठे अभियोग नहीं छापेंगे। यह बात उन्होंने स्वीकार की, और अपने और अन्य कितने हि समाचार पत्रों में इस प्रकार छपवा भी दिया। अब देखो, कि एक मात्र पूजा के योग्य और सर्व्व शक्तिमान् ईश्वर, और विचारालय के न्यायाधीश और अल्प शक्तिमान् प्रभु में कितना अन्तर है ! वर्षों तक वह जिस सर्व्व शक्तिमान् ईश्वर की पवित्र इच्छा पूर्ण करने के लिए, हमारे विरुद्ध नाना प्रकार के मिथ्या अभियोग सत्य कह कर प्रचार करते रहे, उन्हीं को एक अल्प शक्तिमान् विचारपति के दण्ड से डरकर झूठा मानने के लिए तैयार हो गए। और यदि यह कहा जावे, कि वह पहले भी अपनी इन कर्तूतों को, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध और पाप जानते थे, तो फिर जिस ईश्वर की वह एक सामान्य आज्ञा को भी पालन नहीं कर सके, उसकी, और

उसकी पूजा की महिमा औरों के सामने वर्णन करना, क्या बहुत बड़ी धृष्टता नहीं ? परन्तु जैसा मैंने कहा है, मेरे उत्पीड़नकर्ता अधिकांश रूप से यही ईश्वर के विश्वासी और पुजारी रहे हैं। और इन्हीं लोगों के हाथ से मुझे वह सब महा दुःख और क्लेश मिले हैं कि जिनका मैंने संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है।

मैं इससे पहले अपने "विलाप" शीर्षक लेख में से एक भाग उद्धृत कर चुका हूं। देवसमाज के इतिहास में यह स्मरणीय लेख ४ अक्तूबर सन् १८९२ ई० की रात को लिखा गया था। प्रायः आधीरात का समय था। चारों ओर सन्नाटा था। वर्षों तक लगातार विरोधिता के आघातों से मेरा शरीर बहुत रोगी और दुर्ब्बल अवस्था में था। मेरा हृदय चूर २ होकर अत्यन्त दुःख और विषाद से भरा हुआ था। मेरी आंखें आंसुओं से भीग रही थीं। मेरे जीवन व्रत का जहाज़ —जिस पर मेरे परम लक्ष्य का झंडा खड़ा हुआ था—शोक सागर में बड़े वेग से डगमगा रहा था; मेरे चारों ओर निराशा का गहरा अन्धेरा छाया हुआ था। मैं महा विपद की अवस्था में था। परन्तु इस घोर संकट के समय में भी इस समुद्र के किनारे का 'लाइट हाउस' बखूबी रोशन था अर्थात मेरे आत्मा के दिव्य-ज्ञान की पथदर्शक ज्योति बराबर चमक रही थी। इस देव ज्योति में, मैंने, अपने हृदय के गहरे उद्वेग से, अपने विलाप के अखीर में, यह सतरें लिखी थीं :— "लेकन क्या इस बेगुनाह का यह खौफ़नाक दुःख और अज़ाब उठाना यूंहि जायगा ? क्या जो शख्स इन दुःखों से लबे मरग पहुंच चुका है, और जिनसे अगर वह चाहता तो अपना जीवन व्रत छोड़कर फौरन रिहाई पा सकता था, मगर जिनसे उसने अपने मिशन के लिए सच्चा और वफ़ादार रहने की गरज़ से इस तरह से कभी रिहाई हासिल नहीं की, और दूसरों के उद्धार और मंगल के लिए उन्हें अपने सिर पर लेकर बरसों से लगातार एक २ इंच क़ुरबान होता चला आया है, और इस अर्से में एक २ वक़्त में जो अज़ाब उसे मिला है, उसके मुक़ाबल में घड़ी भर की फांसी की तकलीफ़ भी कुछ हक़ीक़त नहीं रखती ! क्या उसका यह सब कामिल त्याग बेमानी और बे मतलब साबित होगा ? क्या ऐसे शख्स की यह ज़िंदगी यूंहि बे असर और बेसूद जायगी? क्या इस रूहानी पुतले का ज़हूर अकारथ प्रमाणित होगा ? क्या उसका असल मिशन कभी किसी पर न खुलेगा ? क्या हमेशा हि तमाम दुनिया उससे अपना मुंह मोड़े रक्खेगी, और सिर्फ़ नफ़रत की निगाह से देखेगी ? क्या सुनसान और तनहाई के वक़्त के उसके कुल आंसू यूंहि ज़ाया जाएंगे ? और उसकी आहो ज़ारी कुछ फल न लाएगी ? क्या देवत्व का कुल बीज, जो उसने बोया है, वह ग़ारत हो जाएगा ? क्या उसके दुखिया दिल पर उसकी तरह कुरबान होकर तसल्ली का मरहम लगाने वाले लोग कभी पैदा

न होंगे ? क्या इस पिशाचतकी दुनिया में उस की ज़िन्दगी का कोई आशिक़ और उसका कोई सच्चा प्रेमक वा अनुरागी न बनेगा ? क्या जिस क़ुरबान गाह में उसने अपने तईं कुल्ली भेंट किया है, उसमें उसकी मिसाल से और उसके प्रेम के लिए और लोग अपने तईं कुल्ली भेंट न धरेंगे ? क्या जिस लासानी और आला मिशन के लिए वह फ़ना होता है, उसके लिए फ़ना होने की ग़रज़ से और सैंकड़ों शख्स खड़े न होंगे ? क्या जिनके बचाने और उद्धार करने, और उन्हें आला ज़िन्दगी की बरकतों से माला माल करने के लिए उसने अपने तईं सदक़े चढ़ाया है, वह न बचेंगे, और आला ज़िन्दगी की आला बरकतें न हासिल करगे ? क्या जिस धर्म्म की अमृत धारा को उसने बहाया है उसे जारी रखने और लगातार बढ़ाने और कुशादा करने के लिए दिनों दिन ज़्यादा से ज़्यादह रूहें न पैदा होंगी ? क्या मेरा मिशन नेचर के क़ानून की बिना पर ज़हूर में नहीं आया ? क्या वह कभी ग़ारत हो सकता है, और तरक़्क़ी करने और फैलने के बग़ैर रह सकता है ? ऐ आसमान[1] ! तू बोल, और ऐ जमीन[2] ! तू शहादत दे ।"

यह मेरी ज़ुबान के शब्द न थे । यह मेरे आत्मा के देव कोष की विलक्षण देववाणी थी, जो उस समय प्रगट हुई थी । सती सीता जब वाल्मीकि के आश्रम से रामचन्द्र के दर्बार में लाई गई थी, और उसके शुद्ध चरित्र पर मिथ्या कलंक का अभियोग लगाया गया था, और उसका पवित्र हृदय इस मिथ्या अभियोग के आघात से टुकड़े २ होकर अत्यन्त आलोड़ित हो रहा था, तब उस असहाय अबला ने अश्रुपात करते २ ज़मीन की तरफ़ देखकर और अपने विव्हल हृदय के सतीत्व भाव की ज़ोरदार शक्ति से परिचालित होकर यह कहा था, कि "यदि मैं सती स्त्री हूं, तो मेरे सत्य के बल से धरती माता तू फट जा, और मैं तेरी सती बेटी अभी तेरी गोद में घुसकर हमेशा की समाधि लेलूं !!" (सती सीता की इस कथा को लिखते वक़्त मेरी आंखों से आंसूओं की धार बह रही है) मैंने भी इस महा दुखदाई विलाप के समय अपने अत्यन्त आलोड़ित हृदय के साथ धरती के भिन्न आकाश को भी अपनी साक्षी करके अत्यन्त करुणा उत्पादक शब्दों में बिलबिला कर यह कहा था :—

"क्या मेरा मिशन नेचर के क़ानून की बिना पर ज़हूर में नहीं आया ? क्या वह कभी ग़ारत हो सकता है, और तरक़्क़ी करने और फैलने के बग़ैर रह सकता है ? ऐ आसमान तू बोल ! ऐ ज़मीन तू साक्षी दे !!" इन धर्म्मबल से परि-

---

१. मुराद देवलोक के देवतों या फ़रिश्तों से है ।

२ मुराद इसी दुनिया की पिछली इन्सानी तारीख़ से है ।

पूर्ण शव्दों से धरती हिल गई, आकाश कांप उठा—मेरे प्रश्न के उत्तर में गुप्त स्वर में यह गूंज उत्पन्न हुई :—

"निश्चय तेरा मिशन नेचर के क़ानून की बिना पर ज़हूर में आया है—धैर्य्य रख और विश्वास कर, कि यह तरक़्क़ी करने और फैलने के विना नहीं रहेगा—हम दोनों हि इस वात की सच्ची साक्षी देते हैं ।"

यह साक्षी निश्चय सत्य थी । महा भयानक प्रतिकूल घटनाओं के साथ २ अनुकूल घटनाएं भी पैदा हुईं और मेरा जीवनव्रत सम्बन्धी कार्य्य भी वढ़ता रहा । पिछले तेरह साल में उसने जिस क़दर आश्चर्य्य जनक उन्नति की है, उसका हाल किसी जान्ने वाले से छिपा हुआ नहीं है ।

८—मेरा निराला संग्राम और मेरी निराली जय ।

वर्षों से घनघोर युद्ध हो रहा है; विरोधी दल दिनों दिन वढ़ रहा है । मैं भी अपने देवशस्त्रों के साथ मैदान में डटा हुआ हूं । अपने उपदेशों, अपने लेखों, अपने व्याख्यानों, अपने कथनों, अपनी शुभ कामनाओं आदि के द्वारा अपनी देवशक्ति के वाणों को चारों ओर छोड़ रहा हूं । मेरे यह तीक्ष्ण वाण एक वा दूसरे जन को घायल करते हैं । घायल होने पर उनके आत्माओं ने मिथ्या और पाप की धातु निर्मित जो जिराबक्तर पहनी हुई थी, उसमें सूराख हो जाते हैं, और उन सूराखों से मेरे जीवन्त देव रूप की कुछ किरणें उनके अन्धकार को दूर करती हैं, और वह मुझे उलटे रूप में देखने के स्थान में किसी क़दर सत्य रूप में देखने का मौक़ा पाते हैं । वह मुझे उस समय हितकर्ता रूप में अवलोकन करते हैं । उनके भीतर मेरे प्रति एक प्रकार की श्रद्धा पैदा होती है, और वह अपने आप मेरी ओर खिच कर चले आते हैं, और मेरा पक्ष ग्रहण करते हैं । मेरा पक्ष ग्रहण करने से उनकी भी मुख़ालफ़त शुरु होती है । उधर विरोधी जन सताते हैं, इधर मेरे पास आने पर यद्यपि उनके कितने हि मोटे २ कुसंस्कार और पाप तो छूट जाते हैं, परन्तु जिन कितनी हि सुख वासनाओं के वह पहले से अनुरागी और उनके भिन्न ईर्षा, द्वेष, अहंकार आदि भावों के अधीन थे, उन पर आघात लगने से उनमें से कितने हि जन मुझे फिर उलटे रूप में देखने लगते हैं । वह मुझ से फटकर फिर वरागी हो

जाते हैं। और कई कृतघ्न इनमें से विरोधी जनों से मिलकर उनसे भी बढ़कर मुझे सताने और हानि पहुंचाने के लिए कमर कस लेते हैं। पारिवारिक जनों की नाना अबोधताओं और अवज्ञाओं से नाना प्रकार के अलग कष्ट मिल रहे हैं। अपने और अपने पारिवारिक जनों के भिन्न, कई अनुयाई जनों के भरणपोषण का भी मुझ पर बोझा है। जंग के नाना सामानों के प्राप्त करने के लिये रुपए की सख़्त ज़रूरत है। और यद्यपि नेचर के विकाशकारी विभाग के गुप्त कार्य्य से धन विषयक अभाव एक सीमा तक दूर होता है, परन्तु ऐसे महा कठिन संग्राम में मुझे अपने लिए जिस सहानुभूति और विश्वास पात्र लोगों की आवश्यकता है, वह सहानुभूति और विश्वस्त जन मुझे प्राप्त नहीं। मैं प्रकाशत: कुछ जनों को अपने पक्ष में देखकर भी किसी को अपना नहीं समझ सकता हूं। मैं किसी पर भरोसा नहीं कर सकता हूं। जिन अनुयाइयों के हृदय में मैं अपनी ज्योति और शक्ति पहुंचाकर उन्हें उच्च बनाने के लिए अति कठिन संग्राम करता हूं, और नाना साधनों और उपदेशों आदि के द्वारा घंटों तक (दिन में भी और रात में भी) अपना निहायत क़ीमती खून और अपनी निहायत क़ीमती ताक़तें उन पर खर्च करता हूं, वह नेचर की अधोगति के क्रम में अपने पूर्व्वजों से ऐसी रद्दी प्रकृति लेकर आए हैं, कि उनमें कोई आशा-जनक परिवर्तन नहीं होता। कुछ दूर के बाद उनकी उन्नति का कोई क्रम नहीं चलता ; और उन पर मेरा अधिकांश परिश्रम निष्फल जाता है। परन्तु मैं हित के नाना अंगों का पूर्ण अनुरागी, अपने परिश्रम की निष्फलता की कुछ भी परवा न करके, और इससे हत-उत्साह न होके, फिर भी उन्हें विविध प्रकार से उन्नत करने और योग्य बनाने के लिए लगातार परिश्रम किए जाता हूं। जिस देश में लाखों लोग उजरत या तनख़्वाह लेकर भी जो काम वह कर सकते हैं, उसके करने से जहां तक हो, जी चुराते हैं, और यथा सम्भव उसे क्या यथेष्ट रूप में और क्या नियत समय में, और क्या भली भान्त, पूरा करना नहीं चाहते, और नहीं करते, जब कि वह उसके द्वारा धन लाभ करने की पूर्ण लालसा भी रखते हैं, उस देश के ऐसे हि जनों मे से जो जन एक ओर आत्म-हित और कर्तव्य बोध विहीन हों, और दूसरी ओर धन लालसा न रखते हों, वह केवल किसी क्षणिक उच्छ्वास से परिचालित होकर मेरे जैसे पूर्ण व्रतधारी के पास आकर क्यों कर ज़िम्मेवारी, उत्साह और परिश्रम के साथ कोई काम अधिक काल तक पूरा कर सकते हैं ? नहीं कर सकते। और केवल यही नहीं, कि वह ऐसा नहीं कर सके, किन्तु अपनी नाना नीच गतियों के द्वारा मेरे लिए नाना प्रकार से हानिकारक बनते रहे। एक ओर मुझे अपने नाना कामों के लिए जिस प्रकार के योग्य जनों की ज़रूरत थी, उन्हें मेरा यह देश दे नहीं सकता,

दूसरी ओर जो अयोग्य जन मुझे प्राप्त हुए हैं, वह नाना उच्च भावों से विहीन होने के कारण केवल यही नहीं, कि मेरे विविध कामों को पूरा करने से लाचार हैं, किन्तु अपनी नाना विश्वासघातक क्रियाओं और अवज्ञाओं से मेरे लिए महा दुखःदाई और हानिकारक बनते हैं और मुझे उनकी इस धर्म्म विषयक पालना में भी बहुत दुःखदाई संग्राम करना पड़ता है। ऐसे लोगों से यद्यपि बहुत से मोटे २ पाप अवश्य छूट जाते रहे हैं, परन्तु और नाना प्रकार के कितने हि पापों का बोध न होने तक, वह मुझे अपनी एक २ नीच क्रिया के द्वारा बहुत दुःख और क्लेश पहुंचाते रहे हैं। कर्तव्य कर्म्म विषयक विविध प्रकार की त्रुटियों और स्वार्थ और अहं आदि विषयक विविध प्रकार की नीच गतियों के द्वारा उन्होंने लगातार वर्षों तक मुझे जिस २ प्रकार की यंत्रणा दी है, उसको मैं हि जानता हूं। ऐसे एक २ सेवक और उसके भिन्न एक २ और सम्बन्धी ने अपनी एक वा दूसरी नीच क्रिया से अनेक वार मुझे इतना क्लेश पहुंचाया है, कि उस्से मैं मछली की न्याईं तड़पता रहा हूं। और कितनी हि वार यह यंत्रणा इतनी असह्य हो गई है, कि मैंने उस समय यह चाहा है, कि यदि मेरा यह शरीर छूट जाय, तो अच्छा हो।

इस दीर्घ काल में मुझे इस अधोगति प्राप्त भारत-भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं मिला, कि जिसको मैं सदा के लिए अपना मित्र और बन्धु अनुभव कर सक्ता, जिस पर पूर्ण विश्वास कर सक्ता, और सदा के लिए उसे अपना शुभाकांक्षी जान सक्ता। तब तुम सोच सक्ते हो, कि मेरा यह संग्राम कितना असाधारण संग्राम रहा है। मैंने इस महा घोर संग्राम में पड़ कर एक २ समय में अपने आप को जहां चारों ओर से सताने और दुख देने वालों से घिरा हुआ पाया है, वहां लाखों मनुष्यों से भरी हुई इस भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं देखा, कि जिसके सन्मुख मैं अपना भली भान्त हृदय भी खोल सकूं, और अपने लिए यथेष्ट सहानुभूति लाभ कर सकूं। मेरी प्रकृति तक पहुंचकर मेरी अवस्था को उपलब्ध करने वाला कोई न था। फिर मुझ पर जिन बहुत से कामों का बोझा पड़ना उचित न था, वह कमर तोड़ बोझा मेरे ऊपर हि पड़ता रहा है। एक २ बार मैं बहुत बीमार हो जाता हूं फिर भी मुझे आराम लेने का मौका नहीं। चिकित्सक कहते हैं, कि मुझे अपने रोग की निवृत्ति और बल की प्राप्ति के लिए आराम करना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु मेरे हालात मुझे आराम लेने नहीं देते। मेरे विरोधी भी मुझे किसी तरह चैन से रहने नहीं देते। उनकी ओर से आघात पर आघात पहुंचाए जा रहे हैं। वह मेरे मिशन के नष्ट करने के लिए सर्व्वदा कमर कसे खड़े हैं। फिर भी मैं अपने अलौकिक धर्म्म बल के द्वारा इन सब महा

विपदों और कठिनाईयों का मुक़ाबला किए जाता हूं। अब यदि इन कुल बातों को सन्मुख लाकर मेरे संग्राम को उपलब्ध करना किसी के लिए सम्भव हो, तो वह अनुमान कर सक्ता है, कि **जैसे मेरा जीवन व्रत अद्वितीय था, वैसे हि उसको पूर्ण करने के लिए मेरा संग्राम और त्याग भी अद्वितीय रहा है।**

व्रत ग्रहण करने के पहले काल को छोड़कर व्रत ग्रहण करने के बाद आज तक पच्चीस वर्षों में, मैंने तुम जैसे नाना प्रकार के अस्तित्वों के उद्धार और कल्याण के लिए क्या २ महा त्याग किया है, क्या २ आघात, क्या २ दुःख, क्या २ क्लेश और अज़ाब सहे हैं, क्या तुम उनके किसी अंश को भी भली भान्त सनमुख ला सकते हो ? इन पच्चीस वर्षों में सख्त बीमारी वा किसी लाचारी के भिन्न मैंने बिना एक दिन की भी छुट्टी लेने के, लगातार हर रोज़ दिन में और अनेक बार बड़ी २ रात तक काम किया है। इस लम्बे काल में मैंने विज्ञान-मूलक धर्म्म, और विज्ञान-मूलक धर्म्म की फ़िलासफ़ी के महागूढ़ तत्वों के अनुसंधान, देवशस्त्र की रचना, उर्दू, अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषा में प्रायः डेढ़ सौ पुस्तकों और सैंकड़ों मुज़ामीन के लिखने और कई मासिक पुस्तकों और अन्य समाचार पत्रों के सम्पादन करने, हज़ारों उपदेशों और व्याख्यानों के देने, विरोधियों के साथ नाना प्रकार का मुक़ाबिला करने, सामाजिक कितनी हि इन्स्टीट्यूशनों के स्थापन और परिचालन करने, धर्म्म प्रचार के काम को चलाने और बढ़ाने के लिए कर्म्मचारियों आदि को नाना प्रकार की शिक्षा देकर तैयार करने, समाज के नित्य बढ़ते हुए नाना प्रकार के कामों के निबटाने, अपने अनोखे और नए मिशन के सम्बन्ध में सैंकड़ों क़िस्म की उलझनों के सुलझाने, दिक़्क़तों और झगड़ों के दूर करने, जंग के नाना प्रकार के ज़रूरी सामानों के हासल करने, लायक़ और काफ़ी जनों के न मिलने से, जो काम औरों के करने का था, उसे मजबूर होकर खुद करने, सेवक सेवकाओं की अवस्था की देखभाल रखने, हेड आफ़िस के सम्बन्ध से विविध कामों की जांच पड़ताल और उनके परिचालन करने, और इसी प्रकार के और बहुत से कार्य्यों के करने में जितना परिश्रम और संग्राम किया है, उनका कौन अनुमान कर सकता है ? रोगी से रोगी अवस्था में भी अपने हित-अनुराग से परिचालित होकर, और हित अनुराग से मजबूर होकर अपनी जान पर खेल कर मैंने जिस २ प्रकार से औरों के हित के लिए सोचा और काम किया है, उसे कौन जान सकता है ? और फिर जिनके भले के लिए यह सब कुछ महा परिश्रम और महा त्याग हुआ है, उन्हीं में से जब लोग मेरी विशेष देव प्रकृति के विरुद्ध अपनी नीच या आसुरिक प्रकृति रखकर मेरे समीप न आते हों, मेरे देव रूप को देखने की योग्यता न रखते हों, नाना हित पाकर भी मेरे प्रति कृतज्ञ

भाव के उत्पादन और प्रदर्शन करने के अयोग्य हों, और कई जन कृतघ्नता के प्रकाश के लिए हर समय तैयार रहते हों, मुझे उचित सन्मान् देना तो कहीं रहा, साधारण भद्रता-मूलक सन्मान् देना भी जिनके लिए अनेक बार कठिन हो, जो मेरी समाज में अपनी उमर का बहुत बड़ा भाग ख़र्च करके भी और मेरे घर में हि जन्म लेकर और पलकर भी, अपनी नीचता पर आघात के लगने से मुझे उलटे रूप में देखने लगते हों, आकर्षण के स्थान में मेरे प्रति घृणा के अति बुरे और विनाश-कारी भाव से भर जाते हों, और कोई जन द्वेष भाव से भरकर दिल २ में मेरीमौत की भी कामना करने लगते हों, और मुझे जिन समीपी जनों के साथ रहना हो, उनके साथ दिल खोलकर साधारणत: कभी बातचीत तक न हो सकती हो, सख्त से सख्त परिश्रम के बाद जब जिसम और दिमाग़ किसी तरह काम करने के लायक़ न रहा हो, तब भी उसकी **तफ़रीह** के लिए प्राय: कोई सोशियल सामान प्राप्त न हो और कोई **हमदर्दी** न मिलती हो, दूसरी तरफ़ बाहर के नीच लोगों से लगा-तार अलग फिटकार और पीड़ा मिलती हो, **उनमें रहकर और उन्हीं के हित में रत रहकर, मैंने अपने जीवन-व्रत के जो पच्चीस साल व्यतीत किए हैं,** उनमें मेरी यह छवि जैसी कुछ कि वह तुम्हारी योग्यता के अनुसार तुम्हारे सामने आ सकती हो, उसे अपने सन्मुख लाओ। सोचो कि इतने काल के ऐसे महा संग्राम में रहकर यदि अब तक मेरा यह स्थूल शरीर बाक़ी है, तो क्या यह मोजिज़ा नहीं ? **क्या यह सच नहीं, कि मैं इस महा संग्राम में पड़कर एक बार नहीं, किन्तु अनेक बार मृत्यु के समीप पहुंच गया हूं** ? क्या यह सच नहीं कि मैं बहुत वर्षों से ऐसे कई रोगों से रोगी हूं, कि जिनके कारण वर्ष के प्राय: सारे दिनों में हि मुझे दवा खाने, पीने और कभी लगाने और डालने की ज़रूरत रहती है ? क्या यह सच नहीं कि मैं अब तक इसलिए बचा रहा हू, कि मेरे व्रत के पूरा करने के लिए मेरा सुरक्षित रहना ज़रूरी था ?

९—मेरे निराले त्याग के निराले फल।

पिछले पच्चीस साल के इस महा घोर संग्राम और मेरे पूर्ण त्याग के द्वारा, अब तक क्या २ फल उत्पन्न हुए हैं, उनका बतलाना इस समय मेरा काम नहीं, किन्तु तुम लोगों का काम है। क्या आज के इस विशेष दिन में तुम उन फलों को अपने, और सैंकड़ों अन्य नर नारियों के जीवन में नहीं देखते ? क्या उन्हें समाज की नाना

इन्टीट्यूशनों में नहीं देखते ? क्या उन्हें नाना आश्रमों और स्कूलों की इमारतों में नहीं देखते ? क्या डियुटी कलेक्टर, तहसीलदार, मेजिस्ट्रेट, वकील, ग्रेजुएट, सौदागर, कारखानेदार और रईस वग़ैरा क्लास में से, जो लोग चन्द सालों के अन्दर समाज में आए हैं. उनमें नहीं देखते ? क्या हमारे मासिक और पाक्षिक पत्रों में, समाज के विविध प्रकार के कामों की जो ख़बरें छपती रहती हैं, उनमें नहीं देखते ? क्या हमारे यहां के कई प्रकार के फंडों के लिए धन प्राप्ति में नहीं देखते ? क्या हमारे यहां हर साल नई से नई जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं. और दिनों दिन हमारे साहित्य की वृद्धि हो रही है, उनमें नहीं देखते ? क्या यह सच नहीं, कि तुममें से जो जन पहले शराबी थे, व्यभिचारी थे, मांसाहारी थे, चोरियां करते थे, रिशवतें लेते थे, जुआ खेलते थे, पशु मारते थे और जिनके घरों में कोई कन्या जीने नहीं पाती थी, ऐसे सब जनों के जीवन में मेरे सम्बन्ध के द्वारा उच्च परिवर्तन के आने से, यह सब पाप और महा पाप दूर हो गए हैं ? तुम्हारी गति बदल गई है, तुम्हारे नीच सम्बन्ध बदल गए हैं, तुम्हारे घरों का नया रूप हो गया है। जहां पहले शराब की भट्टियां चढ़ी रहती थीं, वहां अब धर्म्म के साधन होते हैं। जिन स्थानों में पहले धर्म्म साधनों के लिए कोई स्थान न था, वहां अब मन्दिर बने हुए हैं। जिन घरों की स्त्रियां और लड़कियां मूर्खता की पुतलियां बनी हुई थीं, वह अब धर्म्म सम्बन्धी विविध पुस्तकें पढ़ती हैं। जो पुरुष और स्त्री नाना प्रकार के हानिकारक कुसंस्कारों में फंसे हुए थे, वह अब उनसे उद्धार पा गए हैं। जगह २ सेवकों के लड़के लड़कियों के लिए स्कूल खुल गए हैं। समाज में ऐसी स्त्रियां बहुत थोड़ी मिलेंगी, कि जो कुछ लिखना पढ़ना न जानती हों। जिन घरों से पहले विवाद और कलह की हाय २ उठती रहती थी, वहां से अब उच्चभाव-उत्पादक सङ्गीतों की ध्वनी निकलती है। जो घर नरक की सदृश पाप और दुःखों का स्थान बने हुए थे, वहां से धर्म्म और सद्भावों की महक आ रही है। जो पहले नीच स्वार्थ के वश होकर किसी का कोई भला करना नहीं चाहते थे, यहां तक कि अपने पारिवारिक सम्बन्धियों का भी कभी कोई शुभ नहीं सोच सकते थे वह अब औरों की सेवा और शुश्रुषा करते हैं। जो पहले निकम्मे पड़े रहते थे, और कुछ काम नहीं करते थे, वह परिश्रमी बनकर विविध प्रकार के भले काम करते हैं। यह सब कुछ फल क्योंकर उत्पन्न होते, यदि मैं इस अद्वितीय संग्राम में न पड़ता, और उसमें पड़कर वर्षों तक नाना प्रकार के उत्पीड़न और नीचता जन्य दुःखों और क्लेशों, शारीरिक रोगों और अन्यान्य हानियों को अपने ऊपर न लेता और सब प्रकार के सच्चे और आवश्यक त्याग न करता ? और अब तुमअपने जीवनों के परिवर्तनमें मेरी जिस उद्धार और मंगलकारी शक्ति का कार्य्य देखकर विस्मित होते हो, उसका

यह सब आश्चर्य्यजनक कार्य्य न होता। क्या यह सच नहीं, कि तुम्हारे जीवनों में मेरी देव ज्योति और शक्ति के द्वारा जो शुभ परिवर्तन हुआ है, वह तुम्हारे भीतर कोई और उत्पन्न नहों कर सका था ? तुम्हारे मां बाप आदि सम्बन्धी नहीं कर सके थे, बिरादरी और सम्प्रदाय के लोग नहों कर सके थे—कोई धर्म्म ग्रन्थ नहीं कर सका था, कोई बड़े से बड़ा कल्पित उपास्य देवता भी नहों कर सका था —हां, और कोई भी नहीं कर सका था ! फिर इस सत्य को सन्मुख रखकर तुम भलीभान्त समझ सकते हो, कि मेरा यह महा संग्राम निष्फल नहीं गया, किन्तु उसके द्वारा वह महत् और शुभ फल उत्पन्न हुए हैं, कि जो लासानी हैं, इसीलिए, जहां एक ओर मेरा यह महा जीवन व्रत निराला रहा है, वहां दूसरी ओर मैंने उसके लिए सब प्रकार के निराले त्याग (के) बाद जो जय लाभ की है, वह भी निराली है।

मेरे आत्मा में पहले हित अनुराग की उन्नति के साथ २ उसके विपरीत प्रत्येक अहित उत्पादक क्रिया के संबंध में विराग भाव बढ़ता रहा, फिर उसमें सत्य अनुराग के प्रगट होने और बढ़ने के साथ २ ज्यों २ आत्मा और आत्मिक जीवन के संबंध में सत्यों के देखने और उपलब्ध करने के लिए आन्तरिक ज्योति भी बढ़ती गई, त्यों २ उसके सम्बन्ध में एक ओर मेरे पहले के संस्कार प्राप्त नाना प्रकार के मिथ्या विश्वास धीरे २ दूर होते गए और दूसरी ओर उन विषयों में मेरा सत्य ज्ञान उन्नत होता गया। सन् १८८२ ई० में जबकि मैंने अपने इन देव अनुरागों से परिचालित होकर अपना जीवन व्रत ग्रहण किया था तब और उसके बाद और बारह साल तक मुझमें अपने पूर्व्वजों और अन्य जनों से प्राप्त 'ईश्वर" नामक एक सर्वज्ञ, सर्व्व शक्तिमान और दयामय और मंगलरूप के अस्तित्व के संबंध में विश्वास वर्तमान था। और मैं अपने इस विश्वास के अनुसार उसकी स्तुति और उससे एक वा दूसरी प्रकार की प्रार्थना भी करता रहा। परन्तु जैसे मेरे बाल्यकाल के संस्कार प्राप्त नाना मिथ्या विश्वास विशेषकर जो धर्म्म के नाम से मुझ में आए थे, मेरी आत्मिक ज्योति की उन्नति के साथ २ नष्ट होते गए, वैसे हि यह मिथ्या विश्वास भी सन् १८९४ ई० के आखिरी दिनों में नष्ट हो गया। जैसे आम के बीज वा उसकी गुठली से अनुकूल अवस्था के मिलने पर जो अंकुर फूटता है और वह धीरे २ आम के पौदे के रूप में प्रगट और उन्नत हो होकर एक बहुत बड़ा आम का वृक्ष बन जाता है और वह अपने बीज में जिस प्रकार के पत्तों, फूलों और फलों को उत्पन्न करने वाली जीवनी शक्ति रखता है, अपने विकाश के साथ २ उसी प्रकार के पत्ते, फूल और फल उत्पन्न करता है, वैसे हि मेरा आत्मा जिन देव शक्तियों को बीज रूप में पाकर आविर्भूत हुआ

था, उनके विकाश के लिए वह नेचर से क्रमागत अनुकूल सामान पाकर धीरे २ देव रूप में विकशित होता गया। और ज्यों २ मैं इस देव रूप में उन्नत होता गया त्यों २ मेरे इस देव रूप के देव प्रभाव भी अधिकारी मनुष्यों के आत्माओं में जहां तक और जिस २ प्रकार का उच्च परिवर्तन ला सकते थे, वहां तक उनमें और उन के भिन्न उनसे नीचे के और अस्तित्वों में उच्च परिवर्तन भी लाते रहे। सत्य अनुराग की उन्नति के पथ में जब मैं इस मंज़िल पर पहुंचा कि जिस में पहुंचकर मैंने सत्य नेचर की सत्य महिमा को इतने उज्ज्वल रूप में उपलब्ध किया कि जो मत या विश्वास उसकी निश्चित घटनाओं (facts) और उसके अटल नियमों के मुवाफ़िक न हो, वह किसी तरह सत्य नहीं हो सकता; तब ईश्वर विश्वास के आधार पर मैंने धर्म्म की जो कुछ फ़िलासफ़ी मानी थी वह सब हवाई महल प्रमाणित हुई। इस मंज़िल पर पहुंचकर सत्य ज्ञान के अनुसंधान में **वैज्ञानिक विधि का मुझ पर पूर्ण अधिकार हुआ। इस वैज्ञानिक विधि** के अनुसार नेचर में जो ज्ञान सत्य प्रमाणित हो, वही मेरे लिए ग्रहणीय रह गया। प्राचीन या नवीन, प्रचलित या अप्रचलित, आप्त या अनाप्त, स्वदेशीय या विदेशीय आदि के विचार से कोई बात **विश्वसनीय** न रही। किन्तु जो कुछ वैज्ञानिक विधि के अनुसार नेचर के द्वारा अनुमोदित और समर्थित हो, वही सत्य और वही ग्रहणीय है और उसी का ढूंडना और प्राप्त करना मेरा सार लक्ष्य बन गया। तब से "कल्पना मूलक विश्वास नहीं, किन्तू विज्ञान मूलक सत्य ज्ञान" मेरे हृदय का परिचालक बनता गया। इस काल से लेकर मेरी धर्म्म शिक्षा की बुनियाद नेचर या विश्व की अटल चटान पर स्थापित हुई। इसी साल मेरे जीवनव्रत के १२ वर्ष पूरे हुए। मेरे यह बारह वर्ष बहुत सी बातों के विचार से बहुत बड़े और बिलकुल निराले संग्राम में व्यतीत हुए। तब से लेकर अब तक तेरह साल और भी चले गए हैं। इन तेरह सालों के निराले संग्रामों की अति विचित्र कहानी है। यही पिछले तेरह साल हैं, कि जिनमें मैंने अपने आत्मा में जहां अपेक्षाकृत बहुत अधिक विकाश लाभ किया है, वहां देवसमाज ने भी बहुत आश्चर्य्य-जनक उन्नति की है।

आज के इस विशेष अवसर और शुभ दिन में मैं एक बार फिर उसी २० दिसम्बर को स्मरण करता हूं, कि जिस दिन आज से पच्चीस वर्ष पहले इसी शहर में मैंने अपना निराला जीवनव्रत ग्रहण किया था, और अपने इस निराले व्रत के उस निराले संग्राम को भी स्मरण करता हूं, जिसके भीतर से मैं आज तक गुज़रा हूं. और मैं अपनी आयु के इस बहुत बड़े काल को सन्मुख लाकर इस समय जितना धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं, उसे मेरे भिन्न कोई और उपलब्ध नहीं कर सकता। मैं आज इस विशेष दिन में अपने आपको इस

लिए बहुत विशेष और गहरे रूप से धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं, कि इस काल में

(१) मेरे आत्मा ने महा अद्भुत और अति विचित्र उच्च परिवर्तन अथवा विकाश लाभ किया है।

(२) मेरे आत्मा में सत्य-अनुराग विषयक नाना अंग विकशित हुए हैं।

(३) मेरे आत्मा में हित अनुराग विषयक नाना अंग विकशित हुए हैं।

(४) मेरे आत्मा में असत्य विषयक नाना अंगों के सम्बन्ध में नाना विराग शक्तियां पैदा हुई हैं।

(५) मेरे आत्मा में अहित विषयक नाना अंगों के सम्बन्ध में नाना विराग शक्तियां उन्नत हुई हैं।

(६) मेरे आत्मा ने देवकोष के इन नाना अंगों में विकाश पाकर अपनी गठन में पूर्णता लाभ की है।

(७) मैंने पूर्णाङ्ग देवजीवन को प्राप्त होकर उसमें धर्म्म का वह पूर्णाङ्ग और सत्य रूप देखा और प्रगट किया है, कि जिसे मेरे भिन्न आज तक इस पृथिवी में किसी और आत्मा ने नहीं देखा और नहीं प्रगट किया।

(८) मैंने सत्य और पूर्णाङ्ग धर्म्मजीवन की विज्ञानमूलक वह सत्य आधार भूमि देखी और ज़ाहिर की है, कि जिसे मेरे भिन्न आज तक इस पृथिवी में किसी और आत्मा ने नहीं देखा और नहीं ज़ाहिर किया।

(९) मैंने सत्य और पूर्णाङ्ग धर्म्मजीवन की प्राप्ति के सम्बन्ध में जिस सत्य साधन प्रणाली की शिक्षा दी है, वह आज तक मेरे भिन्न इस पृथिवी में किसी और ने नहीं दी।

(१०) मैंने सत्य और पूर्णाङ्ग धर्म्मजीवन की शिक्षा के सम्बन्ध में जो देव-शास्त्र रचा है, वैसा धर्म्मशास्त्र आज तक इस पृथिवी में किसी ईश्वर व मनुष्य ने नहीं रचा।

(११) मैंने सत्य और पूर्णाङ्ग धर्म्म के क्रमशः परिवर्तन के लिए जिस नमूने की निराली धर्म्म समाज स्थापन की है, वैसी समाज इस पृथिवी में और कहीं वर्तमान नहीं।

(१२) मैंने आत्मा की गठन और उसके जीवन के बन्ने और बिगड़ने के सम्बन्ध में जिन नाना अमूल्य तत्वों को देखा और जाना है, उन्हें इस पृथिवी में किसी और ने नहीं देखा और नहीं जाना।

(१३) मैंने ऐसे देश में जन्म लिया है, कि जिसकी, या यों कहो, कि एशिया के बहुत से देशों की सुख और स्वार्थ मूलक फ़िलासफ़ी, और उसके नाम से झूठे

धर्म्म साधनों ने यहां के निवासियों को नाना हितकर बोधों में विकशित करने के स्थान में उन्हें विश्वगत नाना सम्बन्धों से काटकर उनके कितने हि अच्छे बोधों के नाश करने, और उन्हें अधिक से अधिक बोध शून्य और जड़वत् बनाने में सहाय की है, और मैंने उसके ठीक विरुद्ध अपनी उच्च विकाश-मूलक और इसीलिए सत्य और विज्ञान-सम्मत फ़िलासफ़ी के अनुसार उन्हें न केवल मनुष्य-जगत् के नाना सम्बन्धियों के सम्बन्ध में, किन्तु उसके भिन्न पशु, उद्भिद् और भौतिक जगत् के सम्बन्धियों के साथ भी उनके गहरे सम्बन्ध को उपलब्ध कराने, और इन सम्बन्धों में उच्च वा नीच गति के द्वारा आत्मा के बनने और बिगड़ने का सत्य ज्ञान देकर यहां के महा बेसुध आत्माओं को फिर से जाग्रत करने और उनमें नए से नए हितकर बोधों को उत्पन्न करके, उन्हें नाना प्रकार की नीचताओं से निकालने और नाना प्रकार से उच्च बनाने का महा सुन्दर और वांछनीय अधिकार लाभ किया है।

(१४) मैंने क्या अपने देश, और क्या पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की वह विज्ञान मूलक सत्य फ़िलासफ़ी दी है, और उसके लिए धर्म्म का वह आदर्श और उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है, कि जिसे सब श्रेणियों और सब अवस्थाओं के अधिकारी लोग, चाहे वह पुरुष हों या स्त्री, ग्रहण करके अपना २ सब प्रकार का कल्याण साधन कर सकते हैं।

(१५) मैंने अपने देश और पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की विकाश-तत्व मूलक वह सत्य और विज्ञान-सम्मत फ़िलासफ़ी प्रगट की है, और उस के लिए धर्म्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के लिए उस साधन प्रणाली को प्रकाश किया है, जिसे ग्रहण करने से जहां एक ओर वह अपने आत्मा की अधोगति, और ऐसी अधोगति-मूलक नाना दुःखों से अपनी रक्षा कर सकते हैं, वहां उच्च विकाश को प्राप्त होकर विद्या, विज्ञान, साहित्य, शिल्प, और वाणिज्य आदि की उन्नति करके सच्ची सभ्यता में भी दिनों दिन उन्नत हो सकते हैं।

(१६) मैंने अपने देश और पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की विकाश-तत्व मूलक वह सत्य और विज्ञान-सम्मत फ़िलासफ़ी प्रगट की है, और उसके लिए धर्म्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के लिए उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है, कि जिसके सत्यों को उपलब्ध और ग्रहण करके कल्पना-मूलक सब प्रकार के मिथ्या मतों के महा हानिकारक जाल और मिथ्या मत सम्भूत नाना महा हानिकारक कुसंस्कारों और गृह और सामाजिक

अनुष्ठानों और साम्प्रदायिक विद्वेष और घृणा भावों से मुक्त होकर परस्पर के लिए उत्पीड़नकारी बन्ने के स्थान में परस्पर को शुभ दृष्टि से देखने, और परस्पर के शुभ में सहायकारी बन्ने के योग्य बन सकते हैं। और मनुष्य समाज के भिन्न पशु आदि जगतों के सम्बन्ध में भी मिथ्या धर्म्म मतों की अहितकारी शिक्षा से इस समय तक जो २ अत्याचार जारी है, और हानि हो रही है, उनसे भी उनकी रक्षा हो सकती है, और उनके लिए भी नाना प्रकार के हित का मार्ग खुल जाता है।

१०—धन्य २ और कृतार्थ बोध।

इस सब महा दान के द्वारा आज तक मैं विश्वगत जिस २ जगत् के सम्बन्ध में जहां तक और जो २ कुछ सत्य और शुभ लाने और फैलाने के योग्य हुआ हूं, जहां तक मैंने अपने इस परम लक्ष्य की पूर्ति में सब प्रकार के भयानक से भयानक उत्पीड़न, अत्याचार, दुःख और हानियां सहके, अपने इस अद्वितीय मंत्र को, कि "सत्य, शिव, सुन्दर हि मेरा, परम लक्ष्य होवे; जग के उपकार हि में, जीवन यह जावे" सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है—जहां तक तुम्हारे और तुम्हारे परिवारों में से नाना प्रकार के कुसंस्कारों, पापों, बुराइयों और हानिकारक प्रथाओं को नष्ट करके तुम सब को उनसे मुक्त करने के योग्य हुआ हूं—जहां तक तुम्हारे और तुम्हारे पारिवारिक जनों के हृदयों में शुभ परिवर्तन लाकर मैं तुम्हारे दुःखों को दूर करने, तुम में से कितनों को अकाल मृत्यु से बचाने, और तुम में पवित्रता, सद्भाव और शान्ति स्थापन करने के क़ाबिल बना हूं—तुम्हारे लिए देवसमाज और उसमें नाना हितकर इन्स्टीट्यूशनें क़ायम करके तुम्हारी सन्तान और तुम्हारे अन्य सम्बन्धियों के हित और समृद्धि के साधन में कृतकार्य्य हुआ हूं—जहां तक तुम्हारे भिन्न, और देवसमाज से बाहर नाना मनुष्यों के लिए नाना प्रकार का हित लाने वाला बना हूं—जहां तक मनुष्य जगत् के भिन्न पशु जगत् के हज़ारों जीवों के प्राण बचाने और उनके दुःखों के कम करने, और उचित सुखों के बढ़ा देने का मुझे अधिकार मिला है—जहां तक पशु जगत् के भिन्न उद्भिद् और भौतिक जगतों के सम्बन्ध में भी मुझे विविध प्रकार से सेवाकारी बन्ने का अवसर प्राप्त हुआ है, उस सब दान और सेवा को सन्मुख लाकर आज मैं निश्चय अपने आपको **अत्यन्त धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं**। इस

समय मुझ से हित प्राप्त विश्व के सब जगत् मुझ प्रगट या गुप्त रूप से जो कुछ **शुभ आशीर्वाद** दे रहे हैं, मेरे **परलोक वासी** सम्बन्धी और अन्य **उपकृत** जन मेरे लिए जो आशीष प्रदान कर रहे हैं, उसे पाकर मेरे धन्य-२ अनुभव करने की कोई सीमा नहीं रहती। मेरे इस महा त्याग और जीवनव्रत की सफलता से इस समय तक जो कुछ इस लोक और परलोक में हित आया है, और आयंदा उसके आने के लिए जैसा सच्चा और प्रशस्त मार्ग खुल गया है, उसे सन्मुख लाकर मैं निश्चय अपने जीवन को जैसा सफल और उसके लिए धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता और कर सकता हूं, उसका प्रकाश करना मेरे लिए इस समय असम्भव है।

परन्तु आज मैं यहां कहां होता, और मेरा यह अद्वितीय जीवनव्रत भी कहां होता, और उसे यथा सम्भव सफल करके मैं अपने आपको कृतार्थ भी क्योंकर अनुभव करता, यदि मेरे अस्तित्व के आविर्भाव में, विश्व के विकाश क्रम में मेरे पूर्व्वजों का प्रकाश न होता। मैं आज इस विशेष शुभ दिन में अपने इन पूर्व्वजों की लड़ी में अपने **माता पिता और दादा दादी को विशेष रूप से धन्य २ कहता** हूं, कि जिन का मेरे अस्तित्व में बहुत बड़ा हाथ है। मैं आज के इस शुभ अवसर पर, अपने **सद्गुरु** को विशेष रूप से धन्य २ कहता हूं, कि जो मुझे मेरी युवा अवस्था के संकटमय काल में मेरे लिए धर्म्मपथ में कुछ दिनों तक बहुत अमूल्य हितकारी और सहायक प्रमाणित होने और इस पृथिवी के त्याग करने के बाद भी मेरा मंगल चाहने और करने के भिन्न मेरे नाना सम्बन्धियों का भी नाना प्रकार का मंगल साधन करते रहे हैं। मैं आज के इस शुभ अवसर पर अपने उन नाना इस लोक और परलोक वासी सम्बन्धियों को भी धन्य २ कहता हूं, कि जिनके द्वारा मुझे एक वा दूसरे प्रकार की कोई सहाय वा सेवा प्राप्त हुई है। मैं इस शुभ अवसर पर अपने देश और विदेश के उन नाना जनों को भी धन्य २ कहता हूं, कि जिन से मैंने कभी कोई शारीरिक शुश्रूषा, वा सेवा वा आर्थिक सहाय, वा किसी प्रकार की मानसिक अवगति, वा विद्या, वा कोई उच्च भाव वर्द्धक प्रभाव लाभ किया है। मैं इस शुभ अवसर पर मनुष्य-जगत् के भिन्न उन हितकर नाना दुग्ध प्रदाता और अन्य पशुओं और नाना वृक्षों, और नाना पौदों को धन्य २ कहता हूं, कि जिन्होंने नाना प्रकार से मेरी सेवा की है। विशेष कर उद्भिद्-जगत् ने प्रति-दिन नाना प्रकार से मेरी जितनी सेवा की है, उसके लिए मैं उसे जितना धन्य २ कहूं, वही कम है। मैं इस शुभ अवसर पर भौतिक जगत् की अमूल्य सेवा को भी सन्मुख लाता हूं, कि जिसकी सेवा के बिना मेरा एक मुहूर्त के लिए श्वास-प्रश्वास लेना तक सम्भव न था।

मैं इस शुभ अवसर पर अपने विरोधियों को साधारण रूप से, और उनमें से

कितने हि कृतघ्न जनों को विशेष रूप से स्मरण करता हूं। और यद्यपि मैं उनके अहितकारी और कृतघ्न रूपों को सन्मुख लाकर उन पर मोहित तो नहीं हो सकता, क्योंकि यह विश्व के विकाशकारी नियम के विरुद्ध है, परन्तु मैं हित अनुरागी होकर उनके हित के लिए अवश्य कामना कर सकता हूं, कि जो मंगलकामना मैंने उनके लिए इससे पहले भी अनेक बार की है—इन कृतघ्न जनों में से प्रत्येक ने हि मुझ से और मेरी समाज से सम्बन्ध स्थापन करके अपने जीवन के कई पहलुओं में कई प्रकार की भलाई, और अपनी पहली बुरी अवस्था से निकल कर बेहतरी हासल की है। इनमें से हर एक का हि विविध प्रकार से उपकार हुआ है—उनकी चिट्ठियां, उनके लेख जो हमारे यहां मौजूद हैं, उनसे इस बात का भली भान्त प्रमाण मिल सकता है। उन्होंने भी अब तक पबलिक के सामने यह कहने की कभी दिलेरी नहीं की, कि **वह पहले अच्छे आदमी थे, और देवसमाज स्थापक और देवसमाज के असरों में रहकर बुरे बन गए।** फिर क्या कारण है, कि यही लोग यहां से निकाले जाने पर अपने हितकर्ताओं को तरह २ की नापाक चालों से नुक़सान पहुंचाने की कोशिशें करते हैं? इसके जवाब में बताया जा सकता है, कि जिस देश में चारों तरफ़ ऐसे हज़ारों लोग मिलते हैं, कि जिनमें अपनी हि जाई हुई असहाय सन्तान को भी मार देना जायज़ रहा है, और जहां एक २ बेटा अपने मां बाप को, और एक २ सगा भाई अपने एक २ सगे भाई को तरह २ से सताता और क्लेश पहुंचाता है, और कभी २ यहां तक अधम बन जाता है, कि उनमें से किसी की हत्या तक कर देता है; उसमें यदि **धन वा वाहवा के लालच में पड़कर वा उनके सिवाय द्वेष वा ईर्षा के भाव से भरकर** मुझे वा किसी और को कोई कृतघ्न तरह २ के नुक़सान पहुंचाने के लिए तैयार हो जाए; तो इसमें कौन सी आश्चर्य्य की बात है? परन्तु दुनिया का इतिहास बताता है, कि उत्पीड़नकारियों के उत्पीड़न से केवल यही नहीं, कि कोई शुभ काम उन्नति करने से रुक नहीं सकता; किन्तु अपेक्षाकृत और भी अधिक उन्नति करता है। और उसके सच्चे साथी ऐसी घटनाओं में, उसके लिए और भी अधिक आत्म-त्याग करने के लिए इच्छुक बन जाते हैं; और पहले से अधिक उत्साह के साथ काम करते हैं। देवसमाज की लगातार उन्नति भी इसी सत्य को प्रमाणित करती है।

११—अन्तिम अपील और शुभ कामना।

तब मेरा यह अस्तित्व नेचर के लाखों वर्ष के जिस महा संग्राम का फल है, और इस अस्तित्व के द्वारा मैंने खुद अद्वितीय संग्राम करके, अपने जिस अद्वितीय परम लक्ष्य को आज तक पूरा किया है, उसकी महिमा को जहां तक तुम उपलब्ध कर सकते हो, उसे आज के इस विशेष दिन में उपलब्ध करो। और जिस सब प्रकार से कल्याणकारी पूर्णाङ्ग और सत्य धर्म्म के अलौकिक ज्ञान और प्राप्ति का मैंने तुम्हारे लिए अतुल्य और अमूल्य भंडार खोल दिया है, उस्से लाभ उठाने से यथा साध्य उदासीन और वंचित न रहो। इसके लाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं है। आत्मा वा जीवन से बढ़कर और कोई चीज़ मूल्यवान् नहीं है। एक यही धर्म्म धन हि ऐसा है, कि जिसको लाभ करके तुम उसे सदा अपने पास रख सकते हो, और उसमें विकशित होकर उच्च से उच्च लोकों में प्रवेश कर सकते हो, और अपनी आन्तरिक प्रकृति अथवा अपनी विनाशकारी गतियों और उनके नाना प्रकार के महा हानिकारक दुःखों से मोक्ष लाभ कर सकते हो। और मृत्यु के उपस्थित होने पर पूर्ण शान्ति और तसल्ली के साथ कूच कर सकते हो। और इस महा अधोगति-प्राप्त देश के उभारने में मिसल खमीर के काम दे सकते हो। और उसकी सबसे श्रेष्ट सेवा कर सकते हो। याद रक्खो, कि ऐसे सत्य और पूर्णाङ्ग धर्म्म और उसके प्रकाशक और विकाशक के जान्ने और लाभ करने से बढ़-कर क्या तुम्हारे, और क्या किसी और योग्य मनुष्य के लिए कोई और अधिकार नहीं, और कोई और लाभ नहीं। और जो देवसमाज इसी धर्म्म के साधन और प्रचार के लिए स्थापन हुई है, जिसने मेरे खून से आज तक इतनी परवरिश पाई और उन्नति की है, उस्से वढ़कर तुम्हारे और मनुष्य मात्र के लिए कोई और हितकर और उन्नति दायक समाज नहीं। इसलिए उसमें प्रवेश करना, और उसमें रहना, अपना वहुत बड़ा अधिकार जानो और आज के इस विशेष दिन में अपने ऐसे अधिकार को विशेष रूप से सन्मुख लाकर यह ज़ोरदार आकांक्षा करो कि तुम्हारा आत्मा विनष्ट न हो, तुम्हें धर्म्म जीवन की प्राप्ति हो, और तुम्हें इस सर्व्वोच्च लक्ष्य की सफलता के लिए अपनी जिन २ वासनाओं, उत्तेजनाओं और अहं कोप मूलक नाना शक्तियों के महा हानिकारक और विनाशकारी पंजे से

निकलने की आवश्यकता है, उनसे उद्धार पाने के लिए एक वीर पुरुष की तरह दृढ़ प्रतिज्ञा करो, और तुम्हें जिस देवगुरु और देवसमाज के साथ सम्बन्ध स्थापन करने का अति पवित्र और अति श्रेष्ठ अधिकार मिला है, उनके साथ वफ़ादार रहक उनके कार्य्य की सफलता और उन्नति के लिए जहां तक सम्भव हो, अपने तन, अपने धन, अपनी धरती, और अपने मन आदि को समर्पण करने में केवल यही नहीं, कि कोई संकोच न करो, किन्तु ऐसा करने में हमेशा पूर्ण उत्साह और पूर्ण हर्ष प्रकाश करो, और औरों को भी यही शिक्षा दो, कि देवसमाज में सब प्रकार के दान करने की जितनी महानता और जितनी सफलता है, वह और किसी प्रकार से नहीं।

ऐसा हो, कि यह महोत्सव हम सब के लिए विशेष महोत्सव हो, ऐसा हो, कि यह विशेष महोत्सव देवधर्म्म के प्रचार, और देवसमाज की उन्नति के पथ में विशेष रूप से सहायकारी और एक नए युग का उत्पादक हो, इस आशीर्वाद के साथ मैं अपनी इस ऐड्रस को अब समाप्त करता हूं।

□□⊡

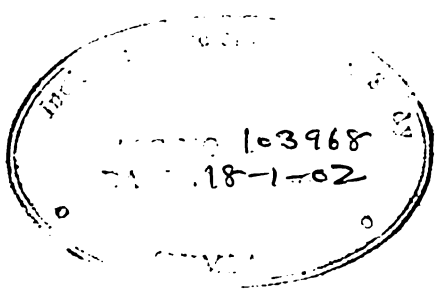

Library IIAS, Shimla
H 294.572 D 491
00103968